* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

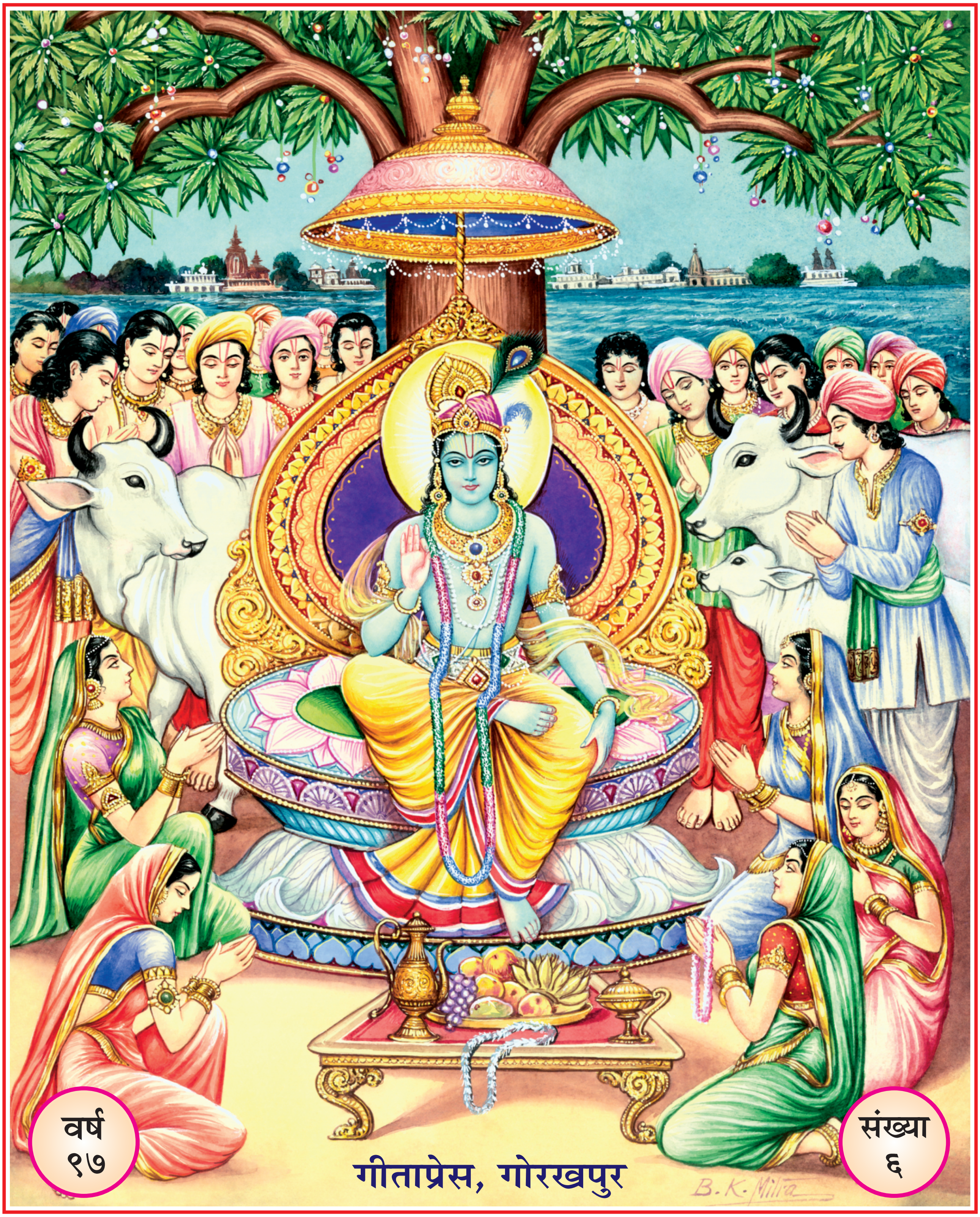

दिव्यलोकमें श्रीकृष्ण

माता कौसल्याकी गोदमें शिशुरूपमें श्रीराम

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

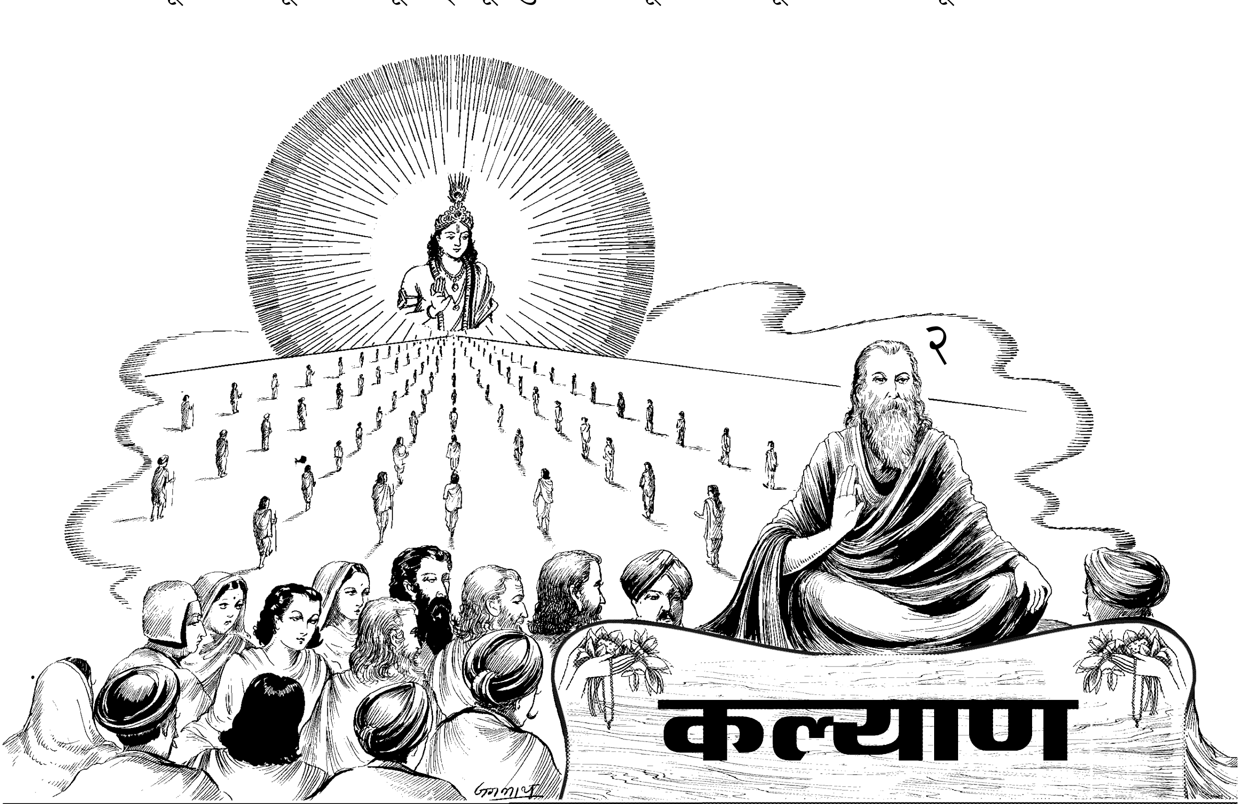

जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥
तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ। धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ॥

[श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड]

वर्ष ९७

गोरखपुर, सौर आषाढ़, वि० सं० २०८०, श्रीकृष्ण-सं० ५२४९, जून २०२३ ई०

संख्या ६

पूर्ण संख्या ११५९

माता कौसल्याकी गोदमें शिशुरूप भगवान् श्रीराम

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥
काम कोटि छबि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा॥
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती॥
रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे॥
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गभीर जान जेहिं देखा॥
भुज बिसाल भूषन जुत भूरी। हियँ हरि नख अति सोभा रूरी॥
उर मनिहार पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा॥
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छबि छाई॥
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे॥
सुंदर श्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला॥
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे॥

[श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,८०,०००)

कल्याण, सौर आषाढ़, वि० सं० २०८०, श्रीकृष्ण-सं० ५२४९, जून २०२३ ई०, वर्ष ९७—अंक ६

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१– माता कौसल्याकी गोदमें शिशुरूप भगवान् श्रीराम	३
२– सम्पादकीय	५
३– कल्याण	६
४– दिव्यलोकमें श्रीकृष्णकी एक झाँकी **[आवरणचित्र-परिचय]**	७
५– महात्मा बननेके मार्गमें मुख्य विघ्न (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	८
६– भारतवर्ष समस्त भूमण्डलकी नाभि है (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	९
७– भगवान् श्रीकृष्णकी रूपमाधुरी (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१०
८– प्रेमयोग (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	११
९– सब कुछ भगवान्का ही रूप है **[साधकोंके प्रति]** (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१२
१०– वैराग्यकी उत्पत्ति (मानस-मर्मज्ञ परम पूज्य श्रीरामकिंकरजी महाराज)	१४
११– भजन किसका करें? (ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)	१६
१२– 'राम नाम मनिदीप धरु' (श्रीरामकृष्ण रामानुजदास 'श्रीसन्तजी महाराज')	१७
१३– 'गंग सकल मुद मंगल मूला' (श्रीराधानन्दसिंहजी)	१८
१४– चिन्मयी गंगा! **[कविता]** (प्रो० श्रीअभिराज राजेन्द्रजी मिश्र, पूर्व कुलपति)	२०
१५– सनातन धर्म (श्रीविश्वम्भर प्रसादजी पिडिहा)	२१
१६– 'रसो वै सः' (मानसकेसरी पं० श्रीबाल्मीकिप्रसादजी मिश्र, एम०ए०, एम०एड०)	२२
१७– 'भलो भलाइहि पै लहइ' (पूज्य स्वामी श्रीसंवित् सुबोधगिरिजी महाराज)	२५
१८– आत्मज्ञानसे ही मुक्ति (श्रीदयानन्दजी यादव)	२६
१९– ईश्वरका न्याय [प्रस्तुति—श्रीशिवकुमारजी गोयल]	२८
२०– यह 'और' 'और'की तृष्णा! **[हमारे आन्तरिक शत्रु]** (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	२९
२१– कुन्तीकी कृष्णभक्ति (श्रीभगवानलालजी शर्मा 'प्रेमी')	३३
२२– 'लू' से बचनेके उपाय **[आरोग्य-चर्चा]** (डॉ० श्रीअनिलकुमारजी गुप्ता)	३६
२३– शुकतालतीर्थ—जहाँ भागवतकथाका शुभारम्भ हुआ **[तीर्थ-दर्शन]** (श्रीइंदलसिंहजी भदौरिया)	३७
२४– गुजरातके भक्तकवि सन्त श्रीकागबापू **[सन्त-चरित]** (श्रीरतिभाईजी पुरोहित)	३९
२५– माँका सपना **[प्रेरक-प्रसंग]** (श्रीमती आशा सिंह)	४०
२६– आयुर्वेदमें गायके गोबरके उपयोग **[गो-चिन्तन]** (प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़)	४१
२७– सुभाषित-त्रिवेणी	४३
२८– व्रतोत्सव-पर्व **[श्रावणमासके व्रत-पर्व]**	४४
२९– कृपानुभूति	४५
३०– पढ़ो, समझो और करो	४६
३१– मनन करने योग्य [प्रे०-वैद्य श्रीभगवती प्रसादजी शर्मा]	४९

चित्र-सूची

१– दिव्यलोकमें श्रीकृष्ण	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२– माता कौसल्याकी गोदमें शिशुरूपमें श्रीराम	(,,)	मुख-पृष्ठ
३– दिव्यलोकमें श्रीकृष्ण	(इकरंगा)	७
४– कुन्ती और कृष्ण	(,,)	३४
५– अक्षय वट, शुकताल तीर्थ	(,,)	३७
६– तितिक्षु ब्राह्मण	(,,)	५०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / एकवर्षीय शुल्क ₹300 मासिक अंक साधारण डाकसे
पञ्चवर्षीय शुल्क ₹2500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / पञ्चवर्षीय शुल्क ₹1500 मासिक अंक साधारण डाकसे
विदेशमें Air Mail शुल्क वार्षिक US$ 50 (₹4,000) / Cheque Collection Charges 6 $ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका** आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**, सहसम्पादक—**कृष्णकुमार खेमका**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org**	e-mail : **kalyan@gitapress.org**	✆ **09235400242/244**	**WhatsApp : 9648916010, 8188054404**

सदस्यता-शुल्क —**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता हेतु gitapress.org के **Kalyan** पर click करके **Subscribe** option पर click करें।
'कल्याण' के मासिक अङ्क www.gitapress.org के **E-Books Option** पर नि:शुल्क पढ़ें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

॥ श्रीहरिः ॥

संस्कृतमें 'अस्ति' का अर्थ होता है 'जो है'। इसी प्रकार 'नास्ति' का अर्थ हुआ 'जो नहीं है'। हम इसपर यदि ध्यान दें कि दिनभरमें हमारी सोच किन चीजोंकी ओर गयी, तो पायेंगे कि अधिकांशमें हमें उन चीजोंकी याद आती है, जो हमें नहीं मिलती, उन लोगोंकी ओर ध्यान रहता है, जिनसे हम नहीं मिल सके। इस प्रकार हम 'अस्ति' (जो है)-की तुलनामें 'नास्ति' (जो नहीं है) उसकी ओर ही झुके रहते हैं। आस्तिक वह है जो 'अस्ति' की ओर ध्यान देता है और जो 'नास्ति' पर अटका हुआ है, वह तो नास्तिक ही है।

अंग्रेजीकी एक कहावत है—Count your blessings (अपनी प्राप्त उपलब्धियोंको गिनो, याद करो)। यह एक अच्छी आदत है। प्रभुकृपासे प्राप्त इस मानव-शरीरसे बड़ी और क्या उपलब्धि होगी? हमें इसके लिये परमात्मप्रभुके प्रति कृतज्ञताका भाव रखते हुए जीवनमें घटित प्रसन्नताके क्षणोंपर ध्यान देनेका अभ्यास करना चाहिये। यही आस्तिकताका सदुपयोग है।

—सम्पादक

हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे ... राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे ... कृष्ण हरे हरे॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

कल्याण

***याद रखो*—**कोई भी प्राणी संसारमें रहकर विषयोंका सेवन किये बिना नहीं रह सकता। घर-द्वार छोड़कर जंगलमें रहनेवाला त्यागी पुरुष भी आँखोंसे वस्तुओंको देखता ही है, कानोंसे शब्दोंको सुनता ही है, नासिकामें गन्ध आती ही है, जीभको खट्टे-मीठे रसका स्वाद मिलता ही है, चमड़ीको ठंडे-गरम या कोमल-कठोरका ज्ञान होता ही है। तब फिर विषयोंसे कैसे बचा जा सकता है। अतएव विषयोंके सेवन न करनेका असली अर्थ है, उसमें आसक्त होकर उनका सेवन न करना। आसक्ति न रहनेपर अनावश्यक तथा हानिकारक विषयोंका सेवन अपने-आप ही छूट जायगा।

***याद रखो*—**विषयोंमें रागको आसक्ति कहते हैं। जब मनुष्यकी कोई इन्द्रिय रागपूर्वक किसी विषयसेवनमें लगती है, तब उसका मन वशमें नहीं रहता। इससे वह उन विषयोंका सेवन करने लगता है, जो विषयके साथ इन्द्रियका संयोग होनेपर अमृतके समान मधुर लगते हैं; परंतु जिसका परिणाम निश्चय ही विषके सदृश होता है। इसलिये सदा सावधान रहो, मनको कभी इन्द्रियके साथ मत जाने दो, उसे सद्‌बुद्धिके नियन्त्रणमें वैसे ही रखो—जैसे सारथिके नियन्त्रणमें लगाम रहती है। जब मन सद्‌बुद्धिके अधीन रहेगा, तब इन्द्रियाँ वैसे ही मनमाने विषयोंका सेवन नहीं कर सकेंगी, जैसे चतुर सारथिके हाथमें लगाम रहनेपर घोड़े मनमाने मार्गपर नहीं चल सकते।

***याद रखो*—**विषयके साथ इन्द्रियका संयोग होनेपर प्राप्त होनेवाले जितने भी भोग हैं, सभी दुःखोत्पादक हैं, इसलिये बुद्धिमान् पुरुष उन भोगोंमें प्रीति या राग करते ही नहीं। पर उन्हीं विषयोंका सेवन यदि स्वाधीन अन्तःकरणवाला पुरुष राग-द्वेषसे रहित अपने वशमें की हुई इन्द्रियोंके द्वारा करता है तो उसे प्रसादकी—प्रसन्नता या निर्मलताकी प्राप्ति होती है, जिससे उसके सारे दुःख मिट जाते हैं और उसकी बुद्धि परमात्मामें तुरंत प्रतिष्ठित हो जाती है।

***याद रखो*—**'विषयसेवनसे तुम बच नहीं सकते' यह सत्य है, पर उन्हीं सद्‌विषयोंका सेवन करो, जो तुम्हें जीवनके चरम लक्ष्य भगवान्‌की ओर ले जानेवाले हों। आँखोंसे भगवान्‌के चित्र देखो, सन्त-महात्माओंको देखो, प्रकृतिके प्रत्येक सुन्दर पदार्थमें, सूर्यके प्रकाशमें, चन्द्रमाकी ज्योत्स्नामें, सरिताके प्रवाहमें, रंग-बिरंगे पक्षियों और तितलियोंमें, पुष्पोंके मनोहर रंगोंमें भगवान्‌के मंगलमय सौन्दर्यको देखो, सत्-साहित्यको देखो, तीर्थों-मन्दिरोंको देखो। कानोंसे भगवान्‌के पवित्र नाम-गुणोंको सुनो, ऋषि-मुनि और सन्त-महात्माओंके चरित्र और उनके सदुपदेशोंको सुनो। वाणीसे भगवान्‌के नाम-गुणोंका गान करो, दूसरोंके हितकी बात कहो, सत्य मधुर शब्दोंका उच्चारण करो। इसी प्रकार अन्यान्य इन्द्रियोंसे सदा सत् तथा शुभ विषयोंका सेवन करो।

***याद रखो*—**शुभ तथा सद्‌विषयोंका सेवन भी यदि सकाम भावसे होगा तो वह भी बन्धनका कारण होगा, अतएव शुभ तथा सद्‌विषयोंका सेवन भी कामना तथा आसक्तिसे रहित होकर केवल भगवान्‌की प्रीतिके लिये ही करो। इस बातसे अवश्य सावधान रहो—कहीं मन किसी भी विषयकी ओर लुभ न जाय। निष्काम भाव होनेपर भी किसी विषयमें रमणीयताका बोध न हो जाय। किसी भी विषयकी ओर कोई इन्द्रिय तुम्हारे मनको खींच न ले जाय। मन-इन्द्रियोंको गुलाम बनाकर जहाँ तुम ठीक समझो, उनको लगाओ, उनके गुलाम बनकर कुछ भी न करो। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

दिव्यलोकमें श्रीकृष्णकी एक झाँकी

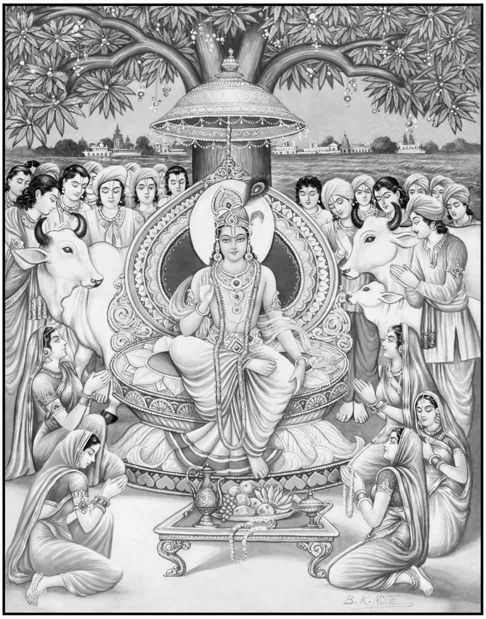

एक समयकी बात है, मुनियोंने ब्रह्माजीसे पूछा—'कौन सबसे श्रेष्ठ देवता है? किससे मृत्यु भी डरती है? किसके तत्त्वको भलीभाँति जान लेनेसे सब कुछ पूर्णतः ज्ञात हो जाता है? किसके द्वारा प्रेरित होकर यह विश्व आवागमनके चक्रमें पड़ा रहता है?'

ब्रह्माजी बोले—''निश्चय ही 'श्रीकृष्ण' सबसे श्रेष्ठ देवता हैं! 'गोविन्द'से मृत्यु भी डरती है! 'गोपीजन-वल्लभ'के तत्त्वको भलीभाँति जान लेनेसे यह सब कुछ पूर्णतः ज्ञात हो जाता है। 'स्वाहा' इस माया-शक्तिसे ही प्रेरित होकर यह सम्पूर्ण विश्व आवागमनके चक्रमें पड़ा रहता है।''

तब मुनियोंने पूछा—'श्रीकृष्ण कौन हैं? और वे गोविन्द कौन हैं? गोपीजनवल्लभ कौन हैं? और वह स्वाहा कौन है?'

यह सुनकर ब्रह्माजीने उन मुनियोंसे कहा—''पापोंका अपकर्षण (अपहरण) करनेवाले 'कृष्ण'; गौ, भूमि तथा वेदवाणीके ज्ञातारूपसे प्रसिद्ध सर्वज्ञ 'गोविन्द'; गोपीजन (जीव-समुदाय)-की अविद्या-कलाके निवारक अथवा अपनी ही अन्तरंगा शक्तिरूप व्रज-सुन्दरियोंमें सब ओरसे सम्पूर्ण विद्याओं एवं चौंसठ कलाओंका ज्ञान भर देनेवाले 'गोपीजनवल्लभ' तथा इनकी मायाशक्ति 'स्वाहा'—यह सब कुछ वह परब्रह्म ही है। इस प्रकार उस श्रीकृष्ण नामसे प्रसिद्ध परब्रह्मका जो ध्यान करता है, जप आदिके द्वारा उनके नामामृतका रसास्वादन करता है तथा उनके भजनमें लगा रहता है, वह अमृतस्वरूप होता है, अमृतस्वरूप होता है (अर्थात् भगवद्भावको ही प्राप्त हो जाता है)।''

तब उन मुनियोंने पुनः प्रश्न किया—'भगवन्! श्रीकृष्णका ध्यान करनेयोग्य रूप कैसा है? उनके नामामृतका रसास्वादन कैसे होता है? तथा उनका भजन किस प्रकार किया जाता है? यह सब हम जानना चाहते हैं; अतः हमें बताइये।'

तब वे हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी स्पष्ट शब्दोंमें उत्तर देते हुए बोले, 'भगवान्‌का ध्यान करनेयोग्य रूप इस प्रकार है—ग्वाल-बालका-सा उनका वेष है, नूतन जलधरके समान श्याम वर्ण है, किशोर अवस्था है तथा वे दिव्य कल्पवृक्षके नीचे विराज रहे हैं।' इसी विषयमें यहाँ ये श्लोक भी हैं—

सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैद्युताम्बरम्।
द्विभुजं ज्ञानमुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरम्॥
गोपगोपीगवावीतं सुरद्रुमतलाश्रितम्।
दिव्यालङ्करणोपेतं रत्नपङ्कजमध्यगम्॥
कालिन्दीजलकल्लोलसङ्गिमारुतसेवितम्।
चिन्तयंश्चेतसा कृष्णं मुक्तो भवति संसृतेः॥

भगवान्‌के नेत्र विकसित श्वेत कमलके समान परम सुन्दर हैं, उनके श्रीअंगोंकी कान्ति मेघके समान श्याम है, वे विद्युत्‌के सदृश तेजोमय पीताम्बर धारण किये हुए हैं, उनकी दो भुजाएँ हैं, वे ज्ञानकी मुद्रामें स्थित हैं, उनके गलेमें पैरोंतक लम्बी वनमाला शोभा पा रही है, वे ईश्वर हैं—ब्रह्मा आदि देवताओंपर भी शासन करनेवाले हैं, गोपों तथा गोप-सुन्दरियोंद्वारा वे चारों ओरसे घिरे हुए हैं, कल्पवृक्षके नीचे वे स्थित हैं, उनका श्रीविग्रह दिव्य आभूषणोंसे विभूषित है, रत्नसिंहासनपर रत्नमय कमलके मध्यभागमें वे विराजमान हैं। कालिन्दीसलिलसे उठती हुई चंचल लहरोंको चूमकर बहनेवाली शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु भगवान्‌की सेवा कर रही है। इस रूपमें भगवान् श्रीकृष्णका मनसे चिन्तन करनेवाला भक्त संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

[गोपालपूर्वतापिन्युपनिषद्]

महात्मा बननेके मार्गमें मुख्य विघ्न

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

ज्ञानी, महात्मा और भक्त कहलाने तथा बननेके लिये तो प्राय: सभी इच्छा करते हैं, परंतु उसके लिये सच्चे हृदयसे साधन करनेवाले लोग बहुत ही कम हैं। साधन करनेवालोंमें भी परमात्माके निकट कोई ही पहुँचता है; क्योंकि राहमें ऐसी बहुत-सी विपद्-जनक घाटियाँ आती हैं, जिनमें फँसकर साधक गिर जाते हैं। उन घाटियोंमें 'कंचन' और 'कामिनी' ये दो घाटियाँ बहुत ही कठिन हैं, परंतु इनसे भी कठिन तीसरी घाटी मान-बड़ाई और ईर्ष्याकी है। किसी कविने कहा है—

कंचन तजना सहज है, सहज त्रियाका नेह।
मान बड़ाई ईर्ष्या, दुर्लभ तजना येह॥

इन तीनोंमें भी सबसे कठिन है बड़ाई। इसीको कीर्ति, प्रशंसा, लोकैषणा आदि कहते हैं। शास्त्रमें जो तीन प्रकारकी तृष्णा (पुत्रैषणा, लोकैषणा और वित्तैषणा) बतायी गयी है, उन तीनोंमें लोकैषणा ही सबसे अधिक बलवान् है। इसी लोकैषणाके लिये मनुष्य धन, धाम, पुत्र, स्त्री और प्राणोंतकका भी त्याग करनेके लिये तैयार हो जाता है।

जिस मनुष्यने संसारमें मान-बड़ाई और प्रतिष्ठाका त्याग कर दिया, वही महात्मा है और वही देवता और ऋषियोंद्वारा भी पूजनीय है। साधु और महात्मा तो बहुत लोग कहलाते हैं, किंतु उनमें मान-बड़ाई और प्रतिष्ठाका त्याग करनेवाला कोई विरला ही होता है। ऐसे महात्माओंकी खोज करनेवाले भाइयोंको इस विषयका कुछ अनुभव भी होगा। हमलोग पहले-पहल जब किसी अच्छे पुरुषका नाम सुनते हैं तो उनमें श्रद्धा होती है, पर उनके पास जानेपर जब हमें उनमें मान-बड़ाई, प्रतिष्ठा दिखलायी देती है, तब उनपर हमारी वैसी श्रद्धा नहीं ठहरती, जैसी उनके गुण सुननेके समय हुई थी। यद्यपि अच्छे पुरुषोंमें किसी प्रकार भी दोषदृष्टि करना हमारी भूल है, परंतु स्वभावदोषसे ऐसी वृत्तियाँ होती हुई प्राय: देखी जाती हैं और ऐसा होना बिलकुल निराधार भी नहीं है; क्योंकि वास्तवमें एक ईश्वरके सिवा बड़े-से-बड़े गुणवान् पुरुषमें भी दोषोंका कुछ मिश्रण रहता ही है। जहाँ बड़ाईका दोष आया कि झूठ, कपट और दम्भ भी आ ही जाते हैं, जब झूठ, कपट और दम्भको स्थान मिल जाता है तो अन्यान्य दोषोंके आनेको तो सुगम मार्ग बन जाता है। यह कीर्तिरूपी दोष देखनेमें छोटा-सा है, परंतु यह केवल महात्माओंको छोड़कर अन्य अच्छे-से-अच्छे पुरुषोंमें भी सूक्ष्म और गुप्तरूपसे रहता है। यह साधकको साधन-पथसे गिराकर उसका मूलोच्छेदन कर डालता है।

अच्छे पुरुष बड़ाईको हानिकर समझकर विचारदृष्टिसे उसको अपनेमें रखना नहीं चाहते और प्राप्त होनेपर उसका त्याग भी करना चाहते हैं। तो भी यह सहजमें उनका पिण्ड नहीं छोड़ती। इसका शीघ्र नाश तो तभी होता है, जब कि यह हृदयसे बुरी लगने लगे और इसके प्राप्त होनेपर यथार्थमें दु:ख और घृणा हो। साधकके लिये साधनमें विघ्न डालनेवाली यह मायाकी मोहिनी मूर्ति है, जैसे चुम्बक लोहेको, स्त्री कामी पुरुषको, धन लोभी पुरुषको आकर्षण करता है, यह उससे भी बढ़कर साधकको संसारसमुद्रकी ओर खींचकर उसे इसमें बरबस डुबो देती है। अतएव साधकको सबसे अधिक इस बड़ाईसे ही डरना चाहिये। जो मनुष्य बड़ाईको जीत लेता है, वह सभी विघ्नोंको जीत सकता है।

योगी पुरुषोंके ध्यानमें तो चित्तकी चंचलता और आलस्य—ये दो ही महाशत्रुके तुल्य विघ्न करते हैं। चित्तमें वैराग्य होनेपर विषयोंमें और शरीरमें आसक्तिका नाश हो जाता है, इससे उपर्युक्त दोष तो कोई विघ्न उपस्थित नहीं कर सकते, परंतु बड़ाई एक ऐसा महान् दोष है, जो इन दोषोंके नाश होनेपर भी अन्दर छिपा रहता है। अच्छे पुरुष भी जब हम उनके सामने उनकी बड़ाई करते हैं तो उसे सुनकर विचारदृष्टिसे इसको बुरा समझते हुए भी इसकी मोहिनी शक्तिसे मोहित हुए-से उस बड़ाई करनेवालेके अधीन-से हो जाते हैं। विचार करनेपर मालूम होता है कि इस कीर्तिरूपी मोहिनी शक्तिसे मोहित न होनेवाला वीर करोड़ोंमें कोई एक ही है। कीर्तिरूपी मोहनी शक्ति जिसको नहीं मोह सकती, वही पुरुष धन्य है, वही मायाके दासत्वसे मुक्त है, वही ईश्वरके समीप है और वही यथार्थ महात्मा है। यह बहुत ही गोपनीय रहस्यकी बात है।

जिसपर भगवान्‌की पूर्ण दया होती है, या यों कहें जो भगवान्‌की दयाके तत्त्वको समझ जाता है, वही इस कीर्तिरूपी दोषपर विजय पा सकता है। इस विघ्नसे बचनेके लिये प्रत्येक साधकको सदा सावधान रहना चाहिये।

भारतवर्ष समस्त भूमण्डलकी नाभि है

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

शास्त्रोंको देखनेसे विदित होता है कि स्वर्गादिके समान भूलोकमें भी बहुत-से खण्ड भोगभूमि ही थे, कर्मभूमि नहीं। अतः मानव-धर्म या साधारण अहिंसा, सत्य आदि धर्मोंकी ही वहाँ प्रतिष्ठापना की गयी। पहलेसे भी विशेष रूपसे भारत ही कर्मभूमि समझा जाता था। यहाँ ही वर्णधर्म, आश्रमधर्म, यज्ञ-योगादि सम्पूर्ण वैदिक धर्मोंका पूर्ण विकास था। यहाँ कर्म, उपासना, ज्ञानकी सिद्धि सरलतासे होती थी। शतक्रतु इन्द्र यहींके कर्मोंसे ऐन्द्र पदको प्राप्त करता है। इसीलिये देवता भी भारतमें जन्म चाहते हैं। जैसे गृहके एक देशमें भी रहकर दीपक समस्त भवनको प्रकाशित करता है, शरीरके एक देश हृदयमें ही अन्तरात्माकी अभिव्यक्ति होती है, परंतु समस्त शरीरका प्रकाश और कार्य उसीसे होता है, वैसे ही भारतवर्ष समस्त भूमण्डलकी नाभि है। पुराणोंके अनुसार जम्बूद्वीप अन्य समस्त द्वीपोंका मध्य है। उसीमें मेरु है और उसीका सारांश भारतवर्ष है। अतः यही सबका हृदय है। जैसे व्यापक होते हुए भी आत्माका हृदयमें ही विशेष रूपसे प्राकट्य होता है, वैसे ही व्यापक धर्म और शास्त्र एवं उनके पालक भगवान्का भारतमें विशेष रूपसे प्राकट्य होता है। भारतके ही ज्ञानालोक और धर्मके प्रभावसे विश्व आलोकित और धार्मिक हुआ। मनु कहते हैं—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

(मनुस्मृति २। २०)

अर्थात् इस देशसे उत्पन्न हुए ब्राह्मणसे पृथ्वीपर सब मनुष्य अपना-अपना आचार सीखें। शरीरके हस्त-पादादि अन्यान्य अंगोंके शुष्क हो जानेपर भी जीवन रह सकता है, परंतु हृदयके शुष्क हो जानेपर फिर जीवन नहीं रह सकता। इस तरह समस्त देशोंके धर्म और ईश्वरसे च्युत हो जानेपर भी विश्व रह सकता है, परंतु उसके हृदय भारतके धर्मशून्य होनेपर विश्वका संहार निश्चित है। इसीलिये भारतके धर्म और शास्त्रसे विमुख होते ही विश्वके नाशकी सम्भावना होती है। जैसे सर्वांगकी अपेक्षा हृदय-रक्षाका ध्यान अधिक होता है, वैसे ही यहाँ धर्म और शास्त्रोंके रक्षार्थ भगवान्का प्राकट्य होता है।

वैदिक धर्म एवं संस्कृतिसे च्युत भिन्न-भिन्न देशोंके लोग यद्यपि अग्निहोत्रादि त्रैवर्णिक कर्मके अधिकारी नहीं रह गये तथापि सामान्य-धर्म या मानव-धर्मके अधिकारी हैं। अतः इतिहास-पुराणादिके श्रवणद्वारा वैदिक धर्मसे उनका भी कल्याण हो ही सकता है, परंतु अनुकूलोंके लिये ही सदुपदेश सफल होता है, प्रतिकूलोंके प्रति किसीका कोई वश नहीं। जो वेद, शास्त्र और वैदिक धर्मसे द्वेष करते हैं, वे भारतीय ब्राह्मण ही क्यों न हों, उन्हें कौन समझा सकता है ? सभी जीव भगवान्के अंश होनेसे उन्हें प्रिय हैं, वे कभी भी भगवान् और भगवदीयोंके उपेक्ष्य नहीं हैं। अतः उन देशों और समाजोंमें भी किसी-न-किसी रूपमें उनकी उच्छृंखलता वारणकर कुछ सत्पथपर लानेके लिये किसी-न-किसी विभूतिद्वारा किसी-न-किसी धर्मका वहाँ भी स्थापन और प्रसार किया जाता है। कुछ-न-कुछ नियमन या पाशविक भावोंका नियन्त्रण वहाँ भी होता ही है, परंतु वास्तविक धर्म और उसके बोधक शास्त्रका भी संरक्षण कहीं-न-कहीं होना ही चाहिये। इसलिये विश्व-हृदय भारतवर्षमें सदा ही वेदादि शास्त्रोंकी रक्षा और तदुक्त धर्मोंकी रक्षाके लिये भगवान्का प्रादुर्भाव होता है। अन्यान्य देशोंमें भी कहा जाता है कि कहीं परमेश्वरके 'दूत' या 'पुत्र' का प्रादुर्भाव होता है, परंतु भारतमें तो स्वयं भगवान्का ही प्रादुर्भाव होता है। वहाँ वैदिक धर्मकी रक्षा और प्रकाशसे समस्त विश्वका प्रकाश और उसकी रक्षा हो सकती है। शरीरके सभी स्थानोंमें आत्माका प्रकाश नहीं होता, इससे आत्माकी संकीर्णताकी कल्पना नहीं की जा सकती। इसी तरह भारतमें ही वैदिक धर्म और शास्त्रोंकी रक्षाके लिये यहाँ ही भगवान्का प्रादुर्भाव हो, इससे उनके शास्त्र और धर्ममें संकीर्णता नहीं कही जा सकती। योग्यता और अधिकारके व्यक्त होनेपर प्राणिमात्रका परम कल्याण वैदिक धर्मसे ही हो सकता है। इन्हीं सब भावोंको ध्यानमें रखनेसे यह समझमें आता है कि भगवान् भारतमें ही क्यों अवतार लेते हैं।

भगवान् श्रीकृष्णकी रूपमाधुरी

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भगवान्‌की उस रूपमाधुरीका वर्णन कौन कर सकता है? वे एक बार जिसकी ओर प्रेमकी नजरसे देख लेते हैं, उसपर प्रेम-सुधा बरसाकर उसे अमर कर देते हैं, उसकी सारी विषयासक्तिको नष्टकर अपना प्रेमी बना लेते हैं। पण्डितराज जगन्नाथ कहते हैं—

रे चेतः कथयामि ते हितमिदं वृन्दावने चारयन्
वृन्दं कोऽपि गवां नवाम्बुदनिभो बन्धुर्न कार्यस्त्वया।
सौन्दर्यामृतमुद्गिरद्भिरभितः सम्मोह्य मन्दस्मितै-
रेष त्वां तव वल्लभांश्च विषयानाशु क्षयं नेष्यति॥

रे चित्त! तेरे हितके लिये तुझे सावधान किये देता हूँ। कहीं तू उस वृन्दावनमें गाय चरानेवाले, नवीन नील मेघके समान कान्तिवाले छैलको अपना बन्धु न बना लेना; वह सौन्दर्यरूप अमृत बरसानेवाली अपनी मन्द मुसकानसे तुझे मोहित करके तेरे प्रिय समस्त विषयोंको तुरंत नष्ट कर देगा।' अद्वैतसिद्धिकार मधुसूदन-स्वामीजीको भी उसकी रूपछटाके फंदेमें पड़कर स्वाराज्यसिंहासनसे च्युत होना पड़ा। वे कहते हैं—

अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः
स्वाराज्यसिंहासनलब्धदीक्षाः।
शठेन केनापि वयं हठेन
दासीकृता गोपवधूविटेन॥

'अद्वैतमार्गके अनुयायियोंद्वारा पूज्य तथा स्वाराज्यरूपी सिंहासनपर प्रतिष्ठित होनेका अधिकार प्राप्त किये हुए हमको गोपियोंके पीछे-पीछे फिरनेवाले किसी धूर्तने हठपूर्वक (जबरदस्ती इच्छा न रहनेपर भी) अपने चरणोंका गुलाम बना लिया।' भक्त लीलाशुकजी उस बालकृष्णकी छबिके जादूसे डरकर सबको सावधान करते हुए कहते हैं—

मा यात पान्थाः पथि भीमरथ्या
दिगम्बरः कोऽपि तमालनीलः।
विन्यस्तहस्तोऽपि नितम्बबिम्बे
धूतः समाकर्षति चित्तवित्तम्॥

'अरे पथिको! उस रास्ते न जाना। वह गली बड़ी भयावनी है। वहाँ अपने नितम्बबिम्बपर हाथ रखे जो तमालके तुल्य नीले रंगका एक नंग-धड़ंग बालक खड़ा है, वह केवल देखनेमात्रका अवधूत है, असलमें तो वह अपने पास होकर निकलनेवाले किसी भी मुसाफिरके मनरूपी धनको लूटे बिना नहीं रहता।'

व्रजरसरसीले साह कुन्दनलालजी श्रीललितकिशोरीजी बने हुए कहते हैं—

नैनचकोर मुख-चंदहूपै वारि डारौं,
वारि डारौं चित्तहि मनमोहन चितचोरपै।
प्रानहूकों वारि डारौं हँसन दसन लाल,
हेरन कुटिलता औ लोचनकी कोरपै॥
वारि डारौं मनहिं सुअंग-अंग स्यामा-स्याम,
महल मिलाप रसरासकी झकोरपै।
अतिहि सुघर बर सोहत त्रिभंगीलाल
सरबस वारौं वा ग्रीवाकी मरोरपै॥

सर्वस्व वार देनेपर भी वह फिर अपनी तिरछी चितवनकी बरछीसे प्रेमी भक्तको घायल करता है और बार-बार उसकी ओर झाँक-झाँककर, हँस-हँसकर घावपर नमक बुरकाता रहता है—

देखो री! यह नंदका छोरा बरछी मारे जाता है।
बरछी-सी तिरछी चितवनकी पैनी छुरी चलाता है॥
हमको घायल देख बेदरदी मंद-मंद मुसकाता है।
ललितकिसोरी जखम जिगर पर नौनपुरी बुरकाता है॥

श्यामकी तिरछी नजरसे घायल प्रेमीका यह जख्मेजिगर कभी सूख ही नहीं सकता, वह सदा हरा रहता है और उसकी पल-पलकी कसक ब्रह्मानन्दसे भी बढ़कर आनन्द दिया करती है। गोपियोंके हृदयमें यह घाव बहुत गहरा था। बड़े भाग्यसे यह दिनोंदिन बढ़नेवाला घाव होता है और स्वयं साँवरेके वैद्य बनकर आनेपर भी यह अच्छा नहीं होता। श्यामसुन्दरके दर्शनसे ही यह बढ़ जाता है और अदर्शन कभी सुहाता नहीं। एकमात्र वही वैद्य है; परंतु वैद्य घाव बढ़ाते हैं, घटाते नहीं। इस घावके बढ़नेमें ही सुख है, इसीलिये घावसे कराहना और बार-बार घाव बढ़ानेका कार्य करना, यही बस, प्रेमियोंके जीवनका नित्य परम सुखदायी दुःख हो जाता है।

प्रेमयोग

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

❁ प्रेम वही है, जो विभु अर्थात् असीम हो, किसी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थितिमें बँधा हुआ न हो, जो सबके साथ समान भावसे हो। सीमित प्यारका नाम तो 'स्वार्थ' है। वह उसके साथ होता है, जिससे कुछ-न-कुछ लेनेकी आशा होती है। वह स्वार्थ यानी किसीसे कुछ लेना या लेनेकी आशा रखना—यही चित्तकी अशुद्धिका प्रधान कारण है।

❁ कर्म कभी भी असीम नहीं होता, उसकी सीमा होती है, उसका विधान होता है एवं उसका सम्बन्ध किसी-न-किसी प्रकारकी परिस्थिति और मान्यतासे होता है एवं परिस्थिति पहलेसे निश्चित होती है। इस कारण कर्म असीम नहीं हो सकता। परंतु प्रेमका सम्बन्ध किसी भी क्रिया, पदार्थ और परिस्थितिसे नहीं होता। अत: वह असीम होता है। जहाँ स्वार्थ होता है, वहाँ प्रेम नहीं होता, स्वार्थके अभावसे ही प्रेम होता है।

❁ स्वार्थ-त्याग ही वास्तवमें त्याग है अर्थात् जो वस्तु अपने पास हो, अपने अधिकारमें हो, उसको छोड़ देना ही त्याग है। यदि कोई न मिलनेवाली वस्तुका त्याग कर दे, तो वह त्याग नहीं है। जब साधककी हरेक चेष्टा प्रभुप्रेमके लिये ही होने लगे तब उसका जीवन रसमय बन जाता है।

❁ प्रेम किसी भी कर्मके अधीन नहीं होता। वह किसी प्रकारकी क्रियामें बँधता नहीं कि अमुक प्रकारकी क्रिया या व्यवहारका नाम ही प्रेम है। भगवत्प्रेमी जिस प्रेम और श्रद्धासे किसी एकपर पुष्प चढ़ाता है, उसी प्रेमसे दूसरेका महान् तिरस्कार भी कर सकता है। इस प्रकार क्रियामें विपरीतता रहनेपर भी प्रेम बना रहता है। उसमें किसी प्रकारका अन्तर नहीं पड़ता। चित्त शुद्ध होनेपर जो असीम प्रेम होता है, उसकी ऐसी ही महिमा है।

❁ प्रेमी तिरस्कार करता है, पर उस तिरस्कार करनेमें वैर या द्वेषभाव नहीं रहता, जैसे सूर्य फलके रसको चूसकर उसे सुखा देता है तथा अग्नि सबको भस्म कर देता है, तो भी वे हिंसक नहीं होते। उनके द्वारा होनेवाला काम हिंसा नहीं कहलाता। उसी प्रकार प्रेमीके विषयमें समझ लेना चाहिये।

❁ जहाँ प्रेम प्रकट हो जाता है, वहाँ इन्द्रियोंके दरवाजे बन्द हो जाते हैं। कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ और अन्त:करण—इन सबकी एकता हो जाती है। इन सबका एक हो जाना अर्थात् सबका बुद्धिमें विलीन हो जाना ही योग है। इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रेमका अर्थ ही अद्वैत अर्थात् एकता है और न्यायका अर्थ द्वैत है।

❁ ईश्वरको मानना एक चीज है और उसके अनुसार अपना जीवन बना लेना दूसरी चीज है। केवल ईश्वरको मान ले, परंतु उसके साथ अपनत्व और प्रेम न हो तो जीवन नहीं बदलता।

❁ प्रेममें देनेका भाव रहता है, लेनेकी इच्छा नहीं रहती। सच्चा सेवक स्वामीसे कुछ चाहता नहीं, उनके सुखमें ही सुखी रहता है। माता पुत्रका लाड़-प्यार करके उसे सुख देनेमें ही प्रसन्न रहती है, मित्र एक-दूसरेको सुख देता है। पति-पत्नी आपसमें एक-दूसरेको सुख देते हैं। कोई भी एक-दूसरेसे कुछ लेना नहीं चाहता। इस प्रकार चारों प्रकारके भक्तोंका भाव समझ लेना चाहिये।

❁ प्रेमी भगवान्‌को रस देनेके लिये ही अपना जीवन सुन्दर बनाते हैं, जैसे सुन्दर पुष्पको खिला हुआ देखकर वाटिकाका स्वामी उस फूलसे प्रेम करता है, उसको हाथमें लेता है, सूँघता है, उसकी शोभाको देखकर प्रसन्न होता है; वैसे ही भगवान् भी अपने प्रेमीको चाहरहित सुन्दर जीवनयुक्त देखकर प्रसन्न होते हैं, उनको उससे रस मिलता है।

सब कुछ भगवान्‌का ही रूप है

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

सब कुछ भगवान् ही हैं—यह गीताका सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त है और इसका अनुभव करनेवालेको भगवान्‌ने अत्यन्त दुर्लभ महात्मा कहा है—

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(गीता ७।१९)

श्रीमद्भागवतमें भगवान्‌ने कहा है—

अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम।
मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः॥

(११।२९।१९)

'मेरी प्राप्तिके जितने साधन हैं, उनमें मैं सबसे श्रेष्ठ साधन यही समझता हूँ कि समस्त प्राणियों और पदार्थोंमें, मन-वाणी तथा शरीरके बर्तावमें मेरी ही भावना की जाय।'

उपनिषदोंमें इस बातको समझनेके लिये तीन दृष्टान्त दिये गये हैं—सोनेका, लोहेका और मिट्टीका। जैसे सोनेके अनेक गहने होते हैं। उन गहनोंकी आकृति, नाम, रूप, तौल, उपयोग, मूल्य आदि अलग-अलग होनेपर भी उनमें सोना एक ही होता है। लोहेके अनेक अस्त्र-शस्त्र होते हैं, पर उनमें लोहा एक ही होता है। मिट्टीके अनेक बर्तन होते हैं, पर उनमें मिट्टी एक ही होती है। ऐसे ही भगवान्‌से उत्पन्न हुई सृष्टिमें अनेक प्राणी, पदार्थ आदि होनेपर भी उनमें भगवान् एक ही हैं।

सोनेसे बने हुए गहनोंमें सोना प्रत्यक्ष दीखता है, लोहेसे बने हुए अस्त्र-शस्त्रोंमें लोहा प्रत्यक्ष दीखता है और मिट्टीसे बने हुए बर्तनोंमें मिट्टी प्रत्यक्ष दीखती है; परंतु परमात्मासे बने हुए संसारमें परमात्मा प्रत्यक्ष नहीं दीखते। इसलिये सब कुछ परमात्मा ही हैं—इस बातको समझनेके लिये गेहूँके खेतका दृष्टान्त दिया जाता है।

किसानलोग गेहूँकी हरी-भरी खेतीको भी गेहूँ ही कहते हैं। खेतीको गाय खा जाती है तो वे कहते हैं कि तुम्हारी गाय हमारा गेहूँ खा गयी, जबकि गायने गेहूँका एक दाना भी नहीं खाया! खेतमें भले ही गेहूँका एक दाना भी दिखायी न दे, पर यह गेहूँ है—इसमें किसानको किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं होता। कोई शहरमें रहनेवाला व्यापारी हो तो वह उसको गेहूँ नहीं मानेगा, प्रत्युत कहेगा कि यह तो घास है, गेहूँ कैसे हुआ? मैंने बोरे-के-बोरे गेहूँ खरीदा और बेचा है, मैं जानता हूँ कि गेहूँ कैसा होता है। परंतु किसान यही कहेगा कि यह वह घास नहीं है, जिसको पशु खाया करते हैं। यह तो गेहूँ है। कारण कि आरम्भमें बीजके रूपमें गेहूँ ही था और अन्तमें भी इसमेंसे गेहूँ ही निकलेगा। अतः बीचमें खेतीरूपसे यह गेहूँ ही है। जो आरम्भ और अन्तमें होता है, वह बीचमें भी होता है—यह सिद्धान्त है—'**यस्तु यस्यादिरन्तश्च स वै मध्यं च तस्य सन्।**' (श्रीमद्भा० ११।२४।१७)

भगवान् सम्पूर्ण सृष्टिके आदि बीज हैं—

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्॥

(गीता १०।३९)

'हे अर्जुन! सम्पूर्ण प्राणियोंका जो बीज (मूल कारण) है, वह बीज मैं ही हूँ; क्योंकि वह चर-अचर कोई प्राणी नहीं है, जो मेरे बिना हो अर्थात् चर-अचर सब कुछ मैं ही हूँ।'

सांसारिक बीज तो वृक्षसे पैदा होता है और फिर वृक्षको पैदा करके स्वयं नष्ट हो जाता है, पर भगवान् पैदा नहीं होते और अनन्त सृष्टियोंको पैदा करके भी स्वयं ज्यों-के-त्यों रहते हैं। इसलिये भगवान्‌ने अपनेको 'सनातन' और 'अव्यय' बीज कहा है—

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।

(गीता ७।१०)

प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥

(गीता ९।१८)

आमके बगीचेमें आमका एक फल भी न हो तो भी वह बगीचा आमका ही कहलाता है। कारण कि पहले भी आमके बीज थे, फिर उनसे वृक्ष उत्पन्न हुए और अन्तमें उनमें आम ही निकलेंगे, इसलिये बीचमें भी वह आमका

ही बगीचा कहलाता है। लौकिक बीजसे तो एक ही प्रकारकी खेती होती है, जैसे—गेहूँके बीजसे गेहूँ ही पैदा होता है, बाजरेसे बाजरा ही पैदा होता है, ज्वारसे ज्वार ही पैदा होता है, मक्केसे मक्का ही पैदा होता है, आमसे आम ही पैदा होता है आदि-आदि। सबके बीज अलग-अलग होते हैं। परंतु भगवान्‌रूपी बीज इतना विलक्षण है कि उस एक ही बीजसे अनन्त भेदोंवाली सृष्टि पैदा हो जाती है—

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥

(गीता १४।४)

'हे कुन्तीनन्दन! सम्पूर्ण योनियोंमें प्राणियोंके जितने शरीर पैदा होते हैं, उन सबकी मूल प्रकृति तो माता है और मैं बीज-स्थापन करनेवाला पिता हूँ।'

सृष्टिसे पहले भी परमात्मा थे—'**सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्**' (छान्दोग्य० ६।२।१) और अन्तमें भी परमात्मा ही रहेंगे—'**शिष्यते शेषसंज्ञः**' (श्रीमद्भा० १०।३।२५), फिर बीचमें दूसरा कहाँसे आया? सोनेके गहनोंमें सोना दीखता है और गेहूँकी खेतीमें गेहूँ नहीं दीखता—इसका तात्पर्य दीखने या न दीखनेमें नहीं है, प्रत्युत तत्त्वको एक बतानेमें है। सभी दृष्टान्तोंका तात्पर्य है कि तत्त्व एक ही है, चाहे दीखे या न दीखे। भगवान् कहते हैं—

अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन॥

(गीता ९।१९)

अमृत भी भगवान्‌का स्वरूप है, मृत्यु भी भगवान्‌का स्वरूप है। सत् भी भगवान्‌का स्वरूप है, असत् भी भगवान्‌का स्वरूप है। सुन्दर पुष्प खिले हों, सुगन्ध आ रही हो तो वह भी भगवान्‌का स्वरूप है और मांस, हड्डियाँ, मैला पड़ा हो, दुर्गन्ध आ रही हो तो वह भी भगवान्‌का स्वरूप है। भगवान्‌ने राम, कृष्ण आदि रूप भी धारण किये और मत्स्य, कच्छप, वराह आदि रूप भी धारण किये। **वे कोई भी रूप धारण करें, हैं तो भगवान् ही! वे चाहे किसी भी रूपमें आयें, उनकी मरजी है।** वे जैसा रूप धारण करते हैं, वैसी ही लीला करते हैं। वराह (सूअर)-का रूप धारण करके वे वराहकी तरह लीला करते हैं, मनुष्यका रूप धारण करके वे मनुष्यकी तरह लीला करते हैं। नृसिंहरूपसे वे प्रह्लादजीको चाटते हैं।

भगवान् उत्तंक ऋषिसे कहते हैं—

धर्मसंरक्षणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च॥
तैस्तैर्वेषैश्च रूपैश्च त्रिषु लोकेषु भार्गव।

(महाभारत, आश्व० ५४।१३-१४)

'मैं धर्मकी रक्षा और स्थापनाके लिये तीनों लोकोंमें बहुत-सी योनियोंमें अवतार धारण करके उन-उन रूपों और वेषोंद्वारा तदनुरूप बर्ताव करता हूँ।'

भगवान् सत्ययुगमें सत्ययुगकी लीला करते हैं, कलियुगमें कलियुगकी लीला करते हैं। कोई पाप, अन्याय करता हुआ दीखे तो समझना चाहिये कि भगवान् कलियुगकी लीला कर रहे हैं। वे कोई भी रूप धारण करके कैसी ही लीला करें, हमारी दृष्टि उनको छोड़कर कहीं जानी ही नहीं चाहिये। भगवान् कहते हैं—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६।३०)

'जो सबमें मुझे देखता है और मुझमें सबको देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।'

जैसे सब जगह बर्फ-ही-बर्फ पड़ी हो तो बर्फ कैसे छिपेगी? बर्फके पीछे बर्फ रखनेपर भी बर्फ ही दीखेगी! ऐसे ही **जब सब रूपोंमें भगवान् ही हों तो भगवान् कैसे छिपेंगे? कहाँ छिपेंगे? किसके पीछे छिपेंगे?** तात्पर्य है कि एक परमात्मा-ही-परमात्मा परिपूर्ण हैं। उस परमात्मामें न मैं है, न तू है, न यह है, न वह है। न भूत है, न भविष्य है, न वर्तमान है। न सर्ग-महासर्ग है, न प्रलय-महाप्रलय है। न देवता है, न मनुष्य है, न राक्षस है। न पशु है, न पक्षी है। न प्रेत है, न पिशाच है। न जड़ है, न चेतन है। न स्थावर है, न जंगम है। एक परमात्माके सिवाय कुछ भी नहीं है। वे एक ही अनेक रूपोंमें बने हुए हैं। वे एक ही अनन्त रूपोंमें भासित हो रहे हैं।

वैराग्यकी उत्पत्ति

(मानस-मर्मज्ञ परम पूज्य श्रीरामकिंकरजी महाराज)

विरागीका अर्थ है कि जिसका किसी वस्तु अथवा व्यक्तिमें राग न हो। दो प्रकारके विरागी होते हैं—कुछ विरागी तो ऐसे होते हैं जो संन्यासी हैं, गृहत्यागी हैं तथा पूरी तरहसे बाह्य बन्धनोंसे मुक्त हो चुके हैं एवं जिनके अन्त:करणमें किसी वस्तुके प्रति राग नहीं है। दूसरे प्रकारके विरागी वे हैं, जो रहते तो घरमें हैं, परंतु घरमें रहते हुए भी जिनके अन्त:करणमें किसी प्रकारका राग नहीं है। हमारी संस्कृतिमें दोनों प्रकारके वैराग्यवालोंका वर्णन आता है। एक ओर तो महात्मा लोग हैं, संन्यासी हैं तथा दूसरी ओर गृहस्थ जीवनमें रहते हुए भी पूर्ण वैराग्ययुक्त महापुरुषोंकी भी कमी नहीं है।

ऐसी मान्यता है कि जब कहीं गुण दिखायी देगा, तब राग तो बढ़ेगा, किन्तु विराग नहीं बढ़ेगा; क्योंकि जहाँपर व्यक्तिको गुण दिखायी देगा, वहाँ राग अवश्य होगा। रामायणमें एक ऐसे पात्र थे, जिनमें गुण तो बहुतसे थे, पर विराग नहीं था और वे पात्र थे महाराज मनु। मनुजी बड़े धर्मात्मा हैं, स्मृतिके निर्माता हैं, शास्त्रोंके निर्माता हैं तथा संसारकी मर्यादाका निर्माण करनेवाले हैं और मनुका गौरव हमारे इतिहासमें अद्वितीय है। उन मनुने अपने राज्यको सर्वदा धर्मके अनुकूल चलाया तथा धर्मशास्त्रकी जितनी विधि-व्यवस्था है, उन सबका मनुने अपने जीवनमें पालन किया। इस प्रकार मनुके जीवनमें सब कुछ तो था, पर एक वस्तु नहीं थी। उसका वर्णन करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं कि मनुने स्वयं स्वीकार किया कि मेरे जीवनमें वैराग्य नहीं है।

होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपन।
हृदयँ बहुत दुख लाग जनम गयउ हरिभगति बिनु॥

(रा०च०मा० १।१४२)

किन्तु मनुके जीवनमें वैराग्य नहीं आया, इसका रहस्य क्या है? यही मनु जब दशरथ बने, तब भी प्रारम्भमें वैराग्य नहीं है, पर अन्तमें उनमें वैराग्य आ गया—इसका रहस्य क्या है?

जब हमें किसी वस्तुमें दोष अथवा दु:ख दिखायी देता है तो हमारा मन उससे हटता है, उससे हमारा राग हटता है और मनुकी समस्या यह है कि उनकी प्रजा बड़ी धर्मात्मा है, पत्नी भी पतिव्रता है तथा पुत्र भी बड़े आज्ञाकारी हैं। इसका परिणाम यह है कि मनु जिधर देखते हैं, उधर प्रत्येक व्यक्तिमें गुण-ही-गुण दिखायी देते हैं तथा गुण दिखायी देनेका परिणाम यह होता है कि उनके मनमें प्रत्येक व्यक्तिके प्रति राग बढ़ता जाता है। यह बात हम अवश्य ध्यानमें रखें कि दूसरोंसे सुख पानेके लिये यह आवश्यक है कि उनसे हम राग करें तथा उनमें हमें गुण दिखायी दें। लेकिन हमें अगर अन्ततोगत्वा उससे भी बड़ी वस्तु (ईश्वर)-को पाना है तो अन्य वस्तुओंसे जब विराग होगा, तभी ईश्वरके प्रति हमारा राग होगा; क्योंकि हमारा राग अगर चारों ओर बँटा रहेगा, तब तो ईश्वरमें राग हो ही नहीं सकता। किन्तु मनुके सामने सबसे बड़ी समस्या यह थी कि उनका राग आज्ञाकारी पुत्र, पतिव्रता पत्नी एवं धर्मात्मा प्रजामें बँटा हुआ था और वैराग्यके अभावमें ही वे वनमें गये।

वस्तुत: मनु बड़े चतुर निकले। उन्होंने विचार किया कि वैराग्यके द्वारा तो ज्ञान पाया जाता है और हमारे जीवनमें वैराग्य है नहीं। परन्तु कोई चिन्ताकी बात नहीं। इसीलिये मनुसे जिस समय भगवान् रामने पूछा कि क्या आप मुक्ति पाना चाहते हैं? तो मनुजीने उलटकर पूछा कि महाराज! बिना वैराग्यके भी क्या मुक्ति प्राप्त हो सकती है? भगवान्‌ने कहा कि बिना वैराग्यके तो मुक्ति नहीं मिल सकती है; क्योंकि राग तो बन्धन है। मनुने कहा कि प्रभु! आप तो अन्तर्यामी हैं, आपको तो यह अच्छी तरह पता है कि मुझमें राग है, वैराग्य नहीं है। भगवान्‌ने पूछा कि जब तुममें वैराग्य नहीं, राग है तो फिर तुम पाना क्या चाहते हो? तो उन्होंने कहा कि प्रभु! राग यदि बन्धन है तो मैं चाहता हूँ कि अपने रागके बन्धनमें आपको भी बाँध लूँ। इसीलिये हम मुक्ति-वुक्तिका वरदान नहीं माँगते। हम तो कहते हैं कि आप भी हमारे बेटे बनकर बँध जाइये। मुझे पुत्र प्रिय है, इसलिये—

चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ॥

मनुका अभिप्राय था कि राग यदि बन्धन है और बन्धनमें अगर जीव बँधा हुआ है तो फिर ईश्वरको भी तो रागके बन्धनमें बाँधनेकी चेष्टा करनी चाहिये, यह विचारकर उन्होंने भगवान्‌को बँधनेके लिये बाध्य किया और मनुका यही क्रम दशरथके रूपमें भी चलता रहा।

महाराज श्रीदशरथके अन्तःकरणमें अत्यन्त राग है। इसीलिये श्रीरामके राजतिलकके एक दिन पहले भी पत्नीके सौन्दर्यसे आकृष्ट होकर वे कैकेयीके महलमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने कैकेयीकी सुन्दरताकी प्रशंसा करते हुए कहा—

बार बार कह राउ सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि।
कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर॥

(रा०च०मा० २। २५)

महाराज दशरथने कैकेयीके स्वभाव और शीलकी प्रशंसा की और वे कैकेयीजीके भवनमें चले जाते हैं; क्योंकि उनके प्रति अधिक आसक्ति है। लेकिन अन्तमें महाराज श्रीदशरथ कैकेयीका परित्याग करके कौसल्याके भवनमें चले जाते हैं और साथ-साथ कैकेयीसे कह देते हैं कि अब तुम मुझे अपना मुँह मत दिखाना, पर यह वैराग्य हुआ कैसे? इसकी पद्धतिपर हम लोग विचार करें।

कैकेयीजी जबतक सुमुखि दिखायी देती रहीं, सुलोचनी, पिकवचनी एवं गजगामिनी दिखायी देती रहीं, तबतक वैराग्य नहीं हुआ। जबतक गुण दिखायी दिये तबतक तो राग ही बढ़ा। परन्तु जब कैकेयीने दुर्व्यवहार किया, कठोर व्यवहार किया, तब उनके अन्तःकरणमें लगा कि अरे, जिसके प्रति मैंने इतना राग किया, उसने मेरे साथ इतना निष्ठुर व्यवहार किया। महाराज श्रीदशरथने कैकेयीसे कह दिया कि अगर तुम रामको वन भेजोगी तो मेरी मृत्यु अवश्यम्भावी है; क्योंकि रामका वियोग हो जानेपर मैं जीवित नहीं रह सकता। महाराज श्रीदशरथको विश्वास था कि कैकेयी पतिव्रता पत्नी हैं। जब वे यह सुनेंगी कि रामके वियोगमें मेरे प्राण चले जायँगे तो वे तुरन्त अपने हठका परित्याग करके कहेंगी कि नहीं, नहीं महाराज! आप जीवित रहिये, क्योंकि आपके जीवित रहनेसे तो मेरा सौभाग्य अखण्ड रहेगा और सचमुच कोई भी पत्नी पतिके प्रति यही तो कामना कर सकती है। लेकिन कैकेयीजी इतनी निष्ठुर हो गयीं कि उन्होंने महाराज श्रीदशरथसे कह दिया कि महाराज! मृत्यु तो दोमें-से एककी होगी। चाहे आपकी हो या चाहे मेरी; क्योंकि आप कह रहे हैं कि यदि राम वन जायँगे तो आपकी मृत्यु होगी और मैं कहती हूँ कि कल सबेरा होते ही यदि राम वन नहीं चले गये तो मेरे प्राण चले जायँगे।

होत प्रातु मुनिबेष धरि जौं न रामु बन जाहिं।
मोर मरनु राउर अजस नृप समुझिअ मन माहिं॥

एक-न-एककी मृत्यु अवश्यम्भावी है। महाराज श्रीदशरथने कैकेयीकी ओर देखकर मानो जानना चाहा कि आप किसकी मृत्यु चाहती हैं? यद्यपि उस समय कैकेयीजीने सीधे तो नहीं कहा, परन्तु उन्होंने अत्यन्त कठोर बात कह दी। वे कहती हैं, महाराज? मेरी मृत्यु और आपकी मृत्युमें यह अन्तर अवश्य है कि मेरी मृत्युके साथ-साथ ***'मोर मरनु राउर अजस'***—मैं यदि मर जाऊँगी तो आपको कलंक लगेगा तथा आपकी कीर्ति नष्ट हो जायगी। पर यदि आप मर जायँगे तो आपको यश मिलेगा तथा मरनेके बाद भी आपकी कीर्ति अमर हो जायगी और आप पूज्य बन जायँगे। इसलिये मरना आपका ही ठीक है, मेरा मरना ठीक नहीं। कितनी चतुराईपूर्ण भाषामें कितनी कठोर बात कह दी गयी कि मेरी मृत्युके बाद आपको कलंक लगेगा तो कितनी बड़ी हानि होगी। दूसरेको कीर्तिके लिये मरनेकी प्रेरणा देना—यह बात तो बड़ी अच्छी-सी प्रतीत होती है। व्यक्तिमें कीर्तिके लिये अपनेको मिटा देनेकी प्रेरणा हो, यह तो अच्छी बात है। लेकिन कैकेयीकी यह निष्ठुरता ही दशरथजीके जीवनका सौभाग्यमय पक्ष था; क्योंकि कैकेयीमें जबतक उन्हें ये चारों गुण दिखायी देते रहे, तबतक उन्हें वैराग्य नहीं हुआ। लेकिन जब उन्हें उनमें दोष और दुःख दिखायी पड़ा तो उनकी आँखें बदल गयीं तथा वैराग्य हो गया और वैराग्य होनेके पश्चात् तुरन्त क्रियाका परित्याग करके वे ज्ञान (कौसल्या)-के भवनमें चले गये।

पहले वे कैकेयीसे कह बैठे थे—***'बार बार कह राउ सुमुखि'***—'हे सुन्दर मुखवाली!' परंतु बादमें जब कैकेयीने रामके लिये वनवासका वरदान माँगा, तब तुलसीदाससे पूछा गया कि अब दशरथजीको सुमुखी कैकेयी कैसी लग रही है तो तुलसीदासजीने कहा, राम-राम! अब भला इन्हें सुमुखी कहनेका मन होता है, बस अब तो ***'""लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे'*** अब यह सुमुखी नहीं, अपितु कुमुखी है। गोस्वामीजीका अभिप्राय है कि जिस मुखके द्वारा ईश्वरको देश निकाला दे दिया गया हो, वह तो कुमुख ही होगा। महाराज दशरथ कैकेयीके नेत्रोंकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि आप बड़े सुन्दर नेत्रोंवाली हैं, परन्तु अब तो उनकी आँखें भूखी बाघिनकी आँखोंके समान दिखायी दे रही हैं।

उतरु न देइ दुसह रिस रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी॥

(रा०च०मा०२।५१।१)

और जो कैकेयी पहले 'पिकबचनि' (कोयलके समान मीठी बोली बोलनेवाली) दिखायी देती थीं, अब उनका एक-एक शब्द ऐसा लग रहा है कि जैसे बाज पक्षीपर टूट रहा हो।

भूप मनोरथ सुभग बनु सुख सुबिहंग समाजु।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचनु भयंकरु बाजु॥

(रा०च०मा० २।२८)

पहले कैकेयीजी हाथीके समान चालवाली दिखायी देती थीं, परन्तु अब? गोस्वामीजीने कहा, हाँ, दशरथजीको वे अब भी दिखायी तो हाथी ही देती हैं, पर अब चालमें हाथी दिखायी नहीं दे रहा। बल्कि दशरथजीने तो कह दिया कि कैकेयी! मैं तो तुम्हारी चालके लिये कहता था कि तुम गजगामिनी हो, किन्तु केवल चालमें ही नहीं, तुम तो व्यवहारमें भी पूरी गज निकली, क्योंकि जैसे हाथीका स्वभाव है, वृक्षको उखाड़कर फेंक देना, इसी तरह तुमने मेरे मनोरथके वृक्षको उखाड़कर नष्ट कर दिया—

मोर मनोरथु सुरतरु फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला॥

(रा०च०मा० २।२९।८)

इस प्रकार पहले कैकेयीमें जो चारों गुण दिखायी दे रहे थे, जब वे दोषके रूपमें परिवर्तित हो गये, तब महाराज श्रीदशरथने कैकेयीका परित्याग कर दिया तथा उनके अन्तःकरणमें वैराग्य उत्पन्न हो गया। इसलिये वर्णन आता है कि महाराज श्रीदशरथको अन्तमें दृढ़ ज्ञानकी प्राप्ति होती है—

रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना। चितइ पितहि दीन्हेउ दृढ़ ग्याना॥

(रा०च०मा० ६।११२।५)

इसका सीधा तात्पर्य है कि वैराग्यकी उत्पत्ति गुणसे नहीं, दोषसे होती है।

[प्रेषक—श्रीअमृतलालजी गुप्ता]

भजन किसका करें ?

(ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

यदि तुम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हो, तो तुम अपना यज्ञोपवीत कराओ, यज्ञोपवीत कराकर नित्यप्रति सन्ध्यावन्दन करो। कुशासनपर बैठकर गायत्रीका जप करो। भगवान् सूर्यदेवको जल दिया करो और जो भी तुम्हारे इष्टदेव हों, वह चाहे भगवान् श्रीराम हों या भगवान् श्रीकृष्ण हों अथवा भगवान् श्रीशंकर हों या भगवती श्रीदुर्गा हों या श्रीहनुमान् हों; जो भी तुम्हारे इष्टदेव हों, उनका भजन-पूजन किया करो। अहर्निश 'श्रीराम जय राम जय जय राम' **का कीर्तन-स्मरण किया करो। श्रीरामनामामृतका पान करना ही मानव-जन्मको सफल करना है। श्रीराम-नामको साधारण मत समझो, याद रखो—**

भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम् । तर्जन यमदूतानां राम रामेति गर्जनम्॥

राम-राम ऐसा घोष करना सम्पूर्ण संसार बीजोंको भून डालनेवाला है और समस्त सुख-सम्पत्तिको प्राप्त करानेवाला है तथा यमदूतोंको भयभीत करानेवाला है।

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्त्र नाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥

श्रीमहादेवजी पार्वतीजीसे कहते हैं कि हे सुमुखि! रामनाम श्रीविष्णुसहस्त्रनामके तुल्य है। मैं सर्वदा 'राम-राम-राम' इस प्रकार मनोरम रामनाममें ही रमण करता हूँ। [प्रेषक—श्रीनन्दकिशोरजी सुलतानिया]

'राम नाम मनिदीप धरु'

(श्रीरामकृष्ण रामानुजदास 'श्रीसन्तजी महाराज')

सनातन हिन्दू-संस्कृतिमें भगवान्‌की भक्ति-भावनाको 'मणिदीप' शब्दद्वारा बताया गया है। भक्तिमें पवित्र भावकी प्रधानता होती है। प्रत्येक मनुष्यमें एक भगवान्‌की सत्ता है, जिसे भगवान्‌का भाव कहा जाता है। भगवान्‌के भावमें कभी परिवर्तन नहीं होता है। भगवान् श्रीकृष्णने भी कहा है—

'नाभावो विद्यते सतः।' (गीता २।१६)

भगवान्‌के भावकी महत्ता भगवत्तत्त्वकी महत्ता है, जिसकी चर्चा श्रीमद्भागवतमें इस प्रकार की गयी है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

(१।२।११)

भगवान्‌की भावना एक है, जिसका अनुभव करना प्रत्येक मानवके जीवनका चरम लक्ष्य है। इसी भावको कोई ब्रह्म कहता है कोई परमात्मा कहता है और कोई भगवान् कहता है। एक ही भगवान् हमारे अन्दर और बाहर सर्वत्र आनन्दमयी लीला कर रहे हैं। इनकी आनन्दमयी भक्ति मणिदीपकी आनन्दमयी वर्षा-ऋतुकी तरह है। कलिकालके सारे दोषोंसे मुक्त होनेके लिये रामनामकी साधना ही 'मणिदीप'की साधना है। रामनामको 'मणिदीप' कहकर भक्तिकी सर्वश्रेष्ठ साधना बतायी गयी है। इसी लक्ष्यसे तुलसीदासजी महाराजने कहा है—

राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥

(रा०च०मा० ७।१२०।९-१०)

जीव भगवान्‌का अंश है। जब मनुष्य प्रेमसे रामनाम जपता है तो उसके जीवनमें वर्षा-ऋतुकी तरह परमानन्दरसकी अनुभूति होती है। इस प्रसंगमें तुलसीदासजीने रामनामके जापककी महिमा बताते हुए कहा है—

बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास॥

(रा०च०मा० १।१९)

ईश्वरीय भावोंका उद्भव तथा विकास रामनाममें श्रद्धा और विश्वासपूर्वक उसे जपनेमें ही होता है। रामनामके साधकोंको ऐसा अनुभव प्राप्त है। केवल मायारूप जड़-शरीरमें फँसे रहनेपर मोह आदि विकार बढ़ते जाते हैं। रामनामकी साधना भगवान्‌की शरणागति भावनाकी साधना है। अध्यात्ममें भाव ही सब कुछ है। रामनाम ईश्वर-भावकी साधना है। मनुष्य जैसी भावना करता है, वह वैसा ही बन जाता है। सत्य ही कहा गया है—

'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।'

भगवान् केवल भाव और प्रेम देखते हैं। मनुष्य-शरीर भगवत्सम्बन्धिनी सच्चा मन्दिर है, जिसका दरवाजा मनुष्यका मुख है। जैसे दरवाजेके द्वारा कोई मनुष्य मन्दिरमें प्रवेश कर जाता है, वैसे ही कोई मनुष्य मुखके अन्दर जिह्वाद्वारा रामनाम जपकर भगवान्‌के भावको प्राप्त कर लेता है। भगवान्‌का भाव प्राप्त कर लेनेपर सारे संसारमें एक भगवान्‌की ही दृष्टि बन जाती है। भक्तके जीवनमें सारा संसार मित्र बन जाता है। भक्तका दिव्य मैत्री-भाव भगवद्भावकी दिव्य दृष्टि होती है, जिसकी चर्चा करते हुए भगवान् श्रीशंकरजीने कहा है—

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

(रा०च०मा० ७।११२ ख)

अध्यात्म-ज्ञान भगवत्प्रेमका बीज है। रामनामकी साधनासे भगवत्सम्बन्धिनी दृष्टि प्राप्त हो जाती है, जिसकी चर्चा करते हुए भगवान्‌ने स्वयं ही कहा है—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६।३०)

इस प्रकार कलिकालमें मनुष्योंके कल्याणके लिये रामनामकी साधनासे बढ़कर अन्य कोई साधना नहीं है। विश्व-कल्याणकी यही सर्वश्रेष्ठ साधना है। ***'राम नाम मनिदीप धरु'*** श्रीरामचरितमानसका सर्वश्रेष्ठ अमृतमय सन्देश है। अमूल्य मानव-जीवनकी सार्थकता भगवान्‌की भक्ति-भावनामें ही है।

'गंग सकल मुद मंगल मूला'

(श्रीराधानन्दसिंहजी)

भारतीय सनातन परम्पराकी सतत प्रवाही चैतन्य धारामें गंगाका परम पवित्र अधिष्ठान है। त्रैलोक्यपावनी गंगा भवसागरसे उद्धार करनेवाला पावन जलयान है। भुक्ति-मुक्तिप्रदायिनी, करुणामयी, त्रयताप हरनेवाली, शिवात्मिका जलरूपा गंगाका माहात्म्य अनिर्वचनीय है; क्योंकि गंगा ब्रह्मद्रवरूपा है। गोस्वामी तुलसीदासने कवितावलीमें श्रीगंगाजीके माहात्म्यका वर्णन करते हुए कहा है—

ब्रह्मु जो ब्यापकु बेद कहैं, गम नाहिं गिरा गुन-ग्यान-गुनीको।
जो करता, भरता, हरता, सुर-साहेबु, साहेबु दीन-दुनीको॥
सोइ भयो द्रवरूप सही, जो है नाथु बिरंचि महेस मुनीको।
मानि प्रतीति सदा तुलसी जलु काहे न सेवत देवधुनीको॥

(कवितावली, उत्तरकाण्ड)

अर्थात् जिस परब्रह्म परमात्माको वेद सर्वव्यापी कहते हैं, जिसके गुण और ज्ञानकी थाह गुणीजन और शारदा भी नहीं पा सकते; जो संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेवाला, देवताओंका स्वामी तथा लोक-परलोकका प्रभु है, जो ब्रह्मा, शिव और मुनिजनोंका भी स्वामी है, निश्चय वही जलरूप हो गया है। तुलसीदासजी कहते हैं—'अरे! विश्वास करके सर्वदा गंगाजलका ही सेवन क्यों नहीं करता?'

इसी प्रकार विनय-पत्रिकाके आरम्भमें ही चार पदोंमें गंगाका वर्णन करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं—

हरनि पाप त्रिविध ताप सुमिरत सुरसरित।
बिलसति महि कल्प-बेलि मुद-मनोरथ-फरित॥

(विनय-पत्रिका पद १९)

अर्थात् हे गंगाजी! स्मरण करते ही तुम पापों और दैहिक, दैविक, भौतिक—इन तीनों तापोंको हर लेती हो। आनन्द और मनोकामनाओंके फलोंसे फली हुई कल्पलताके सदृश तुम पृथ्वीपर शोभित हो रही हो।

और श्रीरामचरितमानसमें तो भक्तकवि गोस्वामी तुलसीदासने गंगा-माहात्म्यका बड़ा ही भक्त्यात्मक वर्णन प्रस्तुत किया है। यह सर्वविदित है कि श्रीरामचरितमानस भक्तिप्रधान महाकाव्य है। भगवान् श्रीरामके चरणारविन्दोंमें अनन्य भक्ति-निष्ठासे सम्पूर्ण समर्पण—यही तुलसीदासजीका एकमात्र उद्देश्य है। मानो **'स्वान्तःसुखाय' 'रघुनाथगाथा'** रूपी मानस (मानसरोवर)-में तुलसीदासजी अपनी भक्तिसम्पन्न मानसिकताके साथ सारे अग-जगको लेकर निमग्न हो रहे हों। गोस्वामी तुलसीदासने अपनी इसी अनन्य रामभक्तिकी धाराको गंगाधारा कहा है—

राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा । सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा॥
बिधि निषेधमय कलिमल हरनी । करम कथा रबिनंदनि बरनी॥

(रा०च०मा० १। २। ८-९)

यहाँ मूल भाव यह है कि जैसे गंगा, यमुना, सरस्वतीमें गंगाकी धारा ही प्रमुख है; क्योंकि संगमके बाद भी धारा गंगा ही कहलाती है; वैसे ही कर्म और ज्ञान उपासनामें मिलकर भक्ति ही कहलाते हैं। इस सांगरूपकसे प्रयागराजमें गंगाजीकी एवं संत-समाजमें भक्तिकी प्रधानता दर्शायी गयी है। आगे भी ***'राम भगति सुरसरितहि जाई'*** तथा ***'जुग बिच भगति देवधुनि धारा'*** में भी ऐसा ही भाव व्यक्त किया गया है। संतों, आचार्योंने दोनोंकी समानतापर गहनतासे विचार करते हुए कहा है कि गंगा और रामभक्ति दोनों सर्वतीर्थमयी हैं। दोनोंकी उत्पत्ति भगवान्‌के चरणोंसे हुई है। दोनों अखिल अग-जगके उद्धार करनेमें समर्थ हैं। एक शिवजीके सिरपर विराजती है तो दूसरी शिवजीके हृदयमें। इस प्रकार गोस्वामीजी अपनी मूल भावनाको गंगाकी पावन धाराके माध्यमसे अभिव्यक्ति देते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास श्रीरामकथाको भी गंगासे उपमित करते हैं। मानसमें भगवान् शिव शिवासे कहते हैं—

पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा । सकल लोक जग पावनि गंगा॥

(रा०च०मा० १। ११२। ७)

अर्थात् रघुपतिकी कथा समस्त लोकोंके लिये जगत्पावनी गंगाजीके समान है। गंगाजी जैसे स्वर्गमें मन्दाकिनी और पातालमें भोगवती नामसे प्रसिद्ध हैं। इसी

प्रकार यह रामकथा भी त्रैलोक्यव्यापिनी और कल्याण-कारिणी है।

विनय-पत्रिकामें श्रीरामके शील-स्वभावका वर्णन अहल्या-उद्धार-प्रसंगके माध्यमसे करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं—

सिला साप-संताप-बिगत भइ परसत पावन पाउ।
दई सुगति सो न हेरि हरष हिय, चरन छुएको पछिताउ॥

(विनय-पत्रिका पद १००)

अर्थात् चरणका स्पर्श होते ही पत्थरकी शिला अहल्या शापके सन्तापसे छूट गयी, उसे सद्गति दे दी; पर इस बातका तो उनके मनमें कुछ भी हर्ष नहीं हुआ, उलटे इस बातका पश्चात्ताप अवश्य हुआ कि ऋषिपत्नीके मेरे चरण क्यों लग गये? इसीलिये मानसमें इस स्थलपर श्रीराम हर्षित नहीं हुए। वे अपने पश्चात्तापके शमनके लिये जगपावनि गंगाके तटपर गये।

चले राम लछिमन मुनि संगा। गए जहाँ जग पावनि गंगा॥

(रा०च०मा० १। २१२। १)

अर्थात् गंगाकी पावन धारा तुलसीके रामको हर्षित करनेवाली और पश्चात्तापसे मुक्ति दिलानेवाली है। मानो प्रभु अपनी लीलासे गंगाके महत्त्वको जगमें द्योतित कर रहे हैं। ऐसा प्रसंग मानसमें अन्यत्र भी मिलता है। जिस प्रकार यहाँ गंगा-स्नानके पश्चात् भगवान् हर्षित होकर मुनियोंके साथ जनकपुर प्रस्थान किये—***'हरषि चले मुनि बृंद सहाया।'*** इसी प्रकार भगवान् श्रीराम वनगमनके समय जब श्रीसीताजी, लक्ष्मण और मन्त्रीसहित शृंगवेरपुर पहुँचे तो गोस्वामीजी कहते हैं—

उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरषु बिसेषी॥
लखन सचिवँ सियँ किए प्रनामा। सबहि सहित सुखु पायउ रामा॥

(रा०च०मा० २। ८७। २-३)

अर्थात् सुरसरिको देखकर श्रीरामचन्द्रजी रथसे उतरे और बहुत प्रसन्न होकर दण्डवत् की। लक्ष्मण, मंत्री और सीताजीने प्रणाम किया। सभीके सहित श्रीरामजीने सुख पाया। मानो, वनगमनके पश्चात् भगवान् श्रीराम यहाँ ही सर्वप्रथम गंगाजीको देखकर हर्षित और सुखी हुए। यहाँपर भगवान् श्रीरामके चरणनखोंसे निःसृत सामने गंगाकी धारा प्रवहमान है और भगवान् हर्षित मनोभावसे सहज रूपसे गंगा-माहात्म्यका वर्णन कर रहे हैं—

गंग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला॥
कहि कहि कोटिक कथा प्रसंगा। रामु बिलोकहिं गंग तरंगा॥
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। बिबुध नदी महिमा अधिकाई॥
मज्जनु कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। सुचि जलु पिअत मुदित मन भयऊ॥

(रा०च०मा०२। ८७। ४—७)

अर्थात् गंगा सारे आनन्द-मंगलोंकी जड़ हैं। वे सब सुखोंकी करनेवाली और सब पीड़ाओंको हरनेवाली हैं। अनेक कथा-प्रसंग कहते हुए श्रीरामजी गंगाजीकी तरंगोंको देख रहे हैं। उन्होंने मन्त्रीको, छोटे भाई लक्ष्मणजीको और प्रिया सीताजीको देवनदी गंगाजीकी बड़ी महिमा सुनायी। इसके बाद सबने स्नान किया, जिससे मार्गका सारा श्रम (थकावट) दूर हो गया और पवित्र जल पीते ही मन प्रसन्न हो गया। यहाँ जो श्रीराम महिमा सुनाते हैं, उसे गुरु विश्वामित्रसे अहल्या-उद्धारके बाद गंगातटपर सुनी थी—

गाधिसूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई॥

(रा०च०मा०१। २१२। २)

उपर्युक्त प्रसंगमें भगवान् श्रीराम वेद और पुराणोंमें वर्णित गंगाके अलौकिक माहात्म्यको पुनरुज्जीवित करते दीख रहे हैं। वेदादि शास्त्रोंमें भी गंगा-माहात्म्य वर्णित हैं। ऋग्वेदके नदीसूक्तमें सर्वप्रथम गंगाका ही आह्वान किया गया है—**इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।** (ऋ० १०। ७५। ५)। पुराणोंमें गंगाके विशद माहात्म्यके अनगिनत श्लोक हैं। इसी हेतु **'नानापुराणनिगमागम-सम्मतं'** मानसमें शास्त्रीय सनातन परम्पराको जीवन्त बनानेके लिये गंगा-माहात्म्यका विशेष प्रसंग वर्णित है।

गंगाकी महत्ता मानसमें तब और बढ़ जाती है। जब जगज्जननी जानकी माँ गंगाकी पूजा अपने पति और देवरके कल्याणके लिये करती हैं और गंगाजीका आशीर्वाद प्राप्त करती हैं—

सियँ सुरसरिहि कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउबि मोरी॥

पति देवर सँग कुसल बहोरी। आइ करौं जेहिं पूजा तोरी॥
सुनि सिय बिनय प्रेम रस सानी। भइ तब बिमल बारि बर बानी॥
सुनु रघुबीर प्रिया बैदेही। तव प्रभाउ जग बिदित न केही॥
लोकप होहिं बिलोकत तोरें। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरें॥
तुम्ह जो हमहि बड़ि बिनय सुनाई। कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि बड़ाई॥
तदपि देबि मैं देबि असीसा। सफल होन हित निज बागीसा॥
प्राननाथ देवर सहित कुसल कोसला आइ।
पूजिहि सब मनकामना सुजसु रहिहि जग छाइ॥

(रा०च०मा० २। १०३। २—८, २। १०३)

गंग बचन सुनि मंगल मूला। मुदित सीय सुरसरि अनुकूला॥

(रा०च०मा० २। १०४। १)

इस प्रकार देवि गंगाकी स्तुति भगवान् श्रीराम और जानकी दोनों विनम्र भावसे करते हैं। विवाहपूर्व जानकीजी माँ पार्वतीका आशीर्वाद प्राप्त करती हैं तो विवाहके पश्चात् माँ गंगाके सम्बन्धी मानसका यह प्रसंग सचमुच भारतीय वैष्णव और शैव भावनाको सात्त्विकता प्रदान करता है। माँ जानकी इस प्रसंगको याद रखती हैं और लंकासे अयोध्या लौटते समय गंगाजीका पूजनकर आशीर्वाद प्राप्त करती हैं—

तब सीताँ पूजी सुरसरी। बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी॥
दीन्हि असीस हरषि मन गंगा। सुंदरि तव अहिवात अभंगा॥

(रा०च०मा० ६। १२१क। ८-९)

केवट-प्रसंगमें तो भगवान् श्रीरामकी लीलाको देखकर गंगा भी मोहित हो जाती हैं, परंतु उनके चरण नखोंको देखकर (अपना उत्पत्ति-स्थान जानकर) प्रसन्न हो जाती हैं।

पद नख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभु बचन मोहँ मति करषी॥

(रा०च०मा० २। १०१। ५)

इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने सत्साहित्यमें विशेषतः श्रीरामचरितमानसमें गंगाजीके अलौकिक एवं अनुपम माहात्म्यका वर्णन किया है, जो जन्म-जन्मान्तरके पाप-ताप-संतापसे विमुक्तकर, कलिमलको प्रक्षालितकर, भगवान् श्रीरामके चरणारविन्दोंमें अनन्य श्रद्धा प्रदान करनेका भक्त्यात्मक सन्निधान है।

चिन्मयी गंगा!

(प्रो० श्रीअभिराज राजेन्द्रजी मिश्र, पूर्व कुलपति)

न होती विश्व में चर्चित यशस्वी कीर्ति भारत की।
विजयध्वज बन लहरती जो न भू पर चिन्मयी गंगा॥ १॥

पहुँच पाते भला अभिशाप कैसे मुक्ति देहरी तक।
उतरती विष्णुपद से यदि नहीं भागीरथी गंगा॥ २॥
हुआ होता महाभारत समर बस आठ ही दिन का।
जनम देती न शन्तनुपुत्र को यदि वत्सला गंगा॥ ३॥
अपरिचित ही बने रहते हिमाचल सिन्धु जीवन भर।
न बनती सेतु दोनों बीच यदि ममतामयी गंगा॥ ४॥
कभी साकार हो पाता न सपना तीर्थ संस्कृति का।
सिरजती जो न प्रतिपद मुक्ति बन महिमामयी गंगा॥ ५॥
न जाने कब तलक यूँ ही भटकती हाय बौराई।
न लेती बाँध बाहों में जो यमुना को सखी गंगा॥ ६॥
समूची भाग्यलिपि ही राष्ट्र की कोरी रही होती।
न लिखती ऊर्मियों का लेख जो करुणामयी गंगा॥ ७॥
अपंगों निर्धनों दीनों करोड़ों वृद्ध शिशुओं को।
वितरती कौन माँ का प्यार होती जो न माँ गंगा॥ ८॥
बनाती कौन इस अभिराज-पण्डितराज को निर्मल।
न अब तक बह रही होती जो भारत में सती गंगा॥ ९॥
अभागी सृष्टि जलकर राख जाने कब बनी होती।
चढ़ी दिन-रात शिव के शीश नहलाती न जो गंगा॥ १०॥
तरसते देवगण भी जन्म लेने को न भारत में।
न बनती तारणा-अवतारणा का स्त्रोत जो गंगा॥ ११॥
अगर भारतसदृश होतीं धराएँ और दुनिया में।
बही होती वहाँ भी, मानिए सच पावनी गंगा॥ १२॥
यही तो खासियत है बन्धुओ! इस पुण्यभारत की।
हमारा ध्वज 'तिरंगा' है, हमारी सोच है गंगा॥ १३॥

सनातन धर्म

(श्रीविश्वम्भरजी प्रसाद पिडिहा)

अहिंसा सत्यमक्रोधो दानमेतच्चतुष्टयम्।
अजातशत्रो सेवस्व धर्म एष सनातनः॥

(महाभारत अनुशासनपर्व १६२। २३)

हे अजातशत्रो! अहिंसा, सत्य, अक्रोध और दान—इन चारोंका सदा सेवन करो, यह सनातन धर्म है॥

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा॥
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः।

(महाभारत शान्तिपर्व १६२। २१)

मन, वाणी और क्रियाद्वारा सभी प्राणियोंके साथ कभी द्रोह न करना तथा दया और दान—यह श्रेष्ठ पुरुषोंका सनातन धर्म है।

त्रीण्येव तु पदान्याहुः सतां व्रतमनुत्तमम्।
न चैव द्रुह्येद् दद्याच्च सत्यं चैव सदा वदेत्॥

(महाभारत वनपर्व २०७। ९३-९४)

श्रेष्ठ पुरुष तीन ही पद बताते हैं—किसीसे द्रोह न करे, दान दे और सदा सत्य ही बोले। यह श्रेष्ठ पुरुषोंका सर्वोत्तम व्रत है।

वेदस्योपनिषत् सत्यं सत्यस्योपनिषद् दमः।
दमस्योपनिषद् दानं दानस्योपनिषत् तपः॥

(महाभारत शान्तिपर्व २५१। ११)

वेदका सार है सत्य, सत्यका सार है इन्द्रिय-संयम और क्रोधादित्यागरूप दम, दमका सार है अन्न, जल, अभयादि दान और दानका सार है निष्कामतारूप तप।

तपसोपनिषत् त्यागस्त्यागस्योपनिषत् सुखम्।
सुखस्योपनिषत् स्वर्गः स्वर्गस्योपनिषच्छमः॥

(महाभारत शान्तिपर्व २५१। १२)

तपका सार है अहंता-ममता आदिका त्याग, त्यागका सार है सुख, सुखका सार है स्वर्ग (सत्त्वगुणके प्रभावसे चित्तकी शुद्धि) और स्वर्गका सार है शान्ति (मन:स्थैर्यरूपा समाधि)।

क्लेदनं शोकमनसोः सन्तापं तृष्णया सह।
सत्त्वमिच्छसि सन्तोषाच्छान्तिलक्षणमुत्तमम्॥
विशोको निर्ममः शान्तः प्रसन्नात्मा विमत्सरः।
षड्भिर्लक्षणवानेतैः समग्रः पुनरेष्यति॥
षड्भिः सत्त्वगुणोपेतैः प्राज्ञैरधिगतं त्रिभिः।
ये विदुः प्रेत्य चात्मानमिहस्थं तं गुणं विदुः॥

(महाभारत शान्तिपर्व २५१। १३—१५)

मनुष्यको सन्तोषपूर्वक रहकर शान्तिके उत्तम उपाय सत्त्वगुणको अपनानेकी इच्छा करनी चाहिये। सत्त्वगुण मनकी तृष्णा, मनके शोक और संकल्पको उसी प्रकार जलाकर नष्ट करनेवाला है, जिस प्रकार गर्म जल चावलको गला देता है। शोकशून्य, ममतारहित, शान्त, प्रसन्नचित्त, मात्सर्यहीन और सन्तोषी—इन छः लक्षणोंसे युक्त मनुष्य समग्र ज्ञानसे तृप्त हो मोक्षलाभ करता है। जो देहाभिमानसे मुक्त होकर सत्त्वप्रधान सत्य, दम, दान, तप, त्याग और शम—इन छः गुणों तथा श्रवण, मनन, निदिध्यासनरूप त्रिविध साधनोंसे प्राप्त होनेवाले आत्माको इस शरीरके रहते हुए ही जान लेते हैं, वे परम शान्तिरूप गुणको प्राप्त होते हैं।

वेदस्योपनिषत् सत्यं सत्यस्योपनिषद् दमः।
दमस्योपनिषन्मोक्ष एतत् सर्वानुशासनम्॥

(महाभारत शान्तिपर्व २९९। १३)

वेदाध्ययनका सार है सत्यभाषण, सत्यभाषणका सार है इन्द्रियसंयम और इन्द्रियसंयमका फल है मोक्ष—यही सम्पूर्ण शास्त्रोंका उपदेश है।

इमे ते लोकधर्मार्थं त्रयः सृष्टाः स्वयम्भुवा।
पृथिव्यां सर्जने नित्यं सृष्टांस्तानपि मे शृणु॥
वेदोक्तः परमो धर्मः स्मृतिशास्त्रगतोऽपरः।
शिष्टाचीर्णोऽपरः प्रोक्तस्त्रयो धर्माः सनातनाः॥

(महाभारत अनुशासनपर्व १४१। ६४-६५)

श्रीब्रह्माजीने सम्पूर्ण जगत्की रक्षाके लिये तीन प्रकारका धर्मका विधान किया है। पृथ्वीकी सृष्टिके साथ ही इन तीनों धर्मोंकी सृष्टि हो गयी है, इनको भी तुम मुझसे सुनो। पहला है वेदोक्त धर्म, जो सबसे उत्कृष्ट धर्म है। दूसरा है वेदानुकूल स्मृतिशास्त्रमें वर्णित—स्मार्त धर्म और तीसरा है शिष्ट पुरुषोंद्वारा आचरित धर्म शिष्टाचार—ये तीनों धर्म सनातन हैं।

'रसो वै सः'

(मानसकेसरी पं० श्रीबाल्मीकिप्रसादजी मिश्र, एम०ए०, एम०एड०)

'ब्रह्मसम्बन्धेन शिष्यान् बन्धयति'

(प्रपत्तिदर्शन)

पुरुषोत्तम भगवान् श्रीसीतारामजीमें सत्-शिष्योंकी अत्यन्ताभिरुचि (प्रेमातिशयता) उत्पन्न करनेके लिये श्रेष्ठ आचार्य भगवत्-सम्बन्ध प्रदान करते हैं। परिणामतः अपनत्वके द्वारा परब्रह्मपरमेश्वर श्रीसीतारामजीमें परम प्रगाढ़ प्रेम उत्पन्न होता है। उनमें शान्त, दास्य, वात्सल्य, सख्य और शृंगार नामक रसोंके अनुसार रसिक लोग रस-पद्धतिका अनुगमन करके रसकी उपलब्धि कर लेते हैं और '**रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति**' नामक श्रुतिको चरितार्थ करते हैं। जीव बिना रसानुभूतिके स्वदेहको भी नहीं सहते, अतः वे किसी-न-किसी रसमें रमते ही रहते हैं, जैसे—अज्ञानी भव-रसमें, त्यागी शान्त-रसमें, ज्ञानी अखण्डज्ञानैक रसमें और वैष्णवजन अनन्त रस (भगवद्रस)-में रमनेके स्वभाववाले होते हैं। वास्तवमें वेदवर्णित रस संज्ञा अनन्त रसको ही प्राप्त है और रस इसका प्रतिबिम्ब अर्थात् छायामात्र है, अतएव आचार्य सत्-शिष्यको भगवत्-सम्बन्ध प्रदान करते हैं।

भक्तिके पाँच रस कहे गये हैं। रुचिके अनुसार भक्त पाँचमेंसे किसीका भी आश्रय लेकर अपने इष्टको प्राप्त कर सकता है।

परम पुरुष अनन्त रसाश्रय है। उसका सम्पूर्ण विग्रह ही रसमय है। भगवद्रसकी रसमयी वार्ता एवं उसका अनुभव रस-स्वरूप भगवत् रसिक ही कुछ अंशमें करके उसकी महानता और अचिन्त्य शक्तिका परिशीलन करके उसीमें विलीन होकर तद्रूप हो जाते हैं अर्थात् रसरूप होकर रसानुभूति करते हुए रसानन्दका आस्वाद प्राप्तकर आनन्द-विग्रहके अतिरिक्त अकिंचित् ही रहते हैं। उस स्थितिकी लीला, लीलाके पात्र, लीलाकी सारी चेष्टाएँ तथा लीलाकी समस्त साधनभूता सामग्रियाँ रसस्वरूप आनन्दकी जननी ही होती हैं।

इस प्रेमरस (अनन्त रस)-के विविध भेद शास्त्रोंमें वर्णित हैं, किंतु उनमें पाँच मुख्य माने गये हैं, वे इस प्रकार हैं—

(१) शान्त रस—जीवात्मा और परमात्मा दोनों सहज संघाती हैं, परंतु जीवने बुद्धिके संयोगसे स्वयंमें अहंकारका आरोपण करके रसभंग कर दिया, वह भगवान्‌को भूल गया और विषयासक्त हो गया। यद्यपि ईश और जीव दोनों एक ही तत्त्व हैं,फिर भी दोनोंमें भोक्ता और भोग्यका सम्बन्ध है। जीवने अपने सहज स्वरूपको भुला दिया और मैं-मैं कहता हुआ विषयोंमें भटक गया—

बनि स्वतंत्र भोक्ता भयो, भूल्यो आपन भान।
ईश सखा है साक्षी, द्रष्टा बने सुहान॥
द्वै अलिप्त ईश्वर रहे, लिप्त होय यह जीव।
ताते बंधन महँ परत, यदपि सखा है सीव॥

(रसचन्द्रिका ३, ६, ७)

ध्यान समाधिमें ईश्वरका जो चिन्तन किया जाता है, उसे शान्त रस कहते हैं। भगवद्भावके उदित होनेपर जब जीवात्मा परमात्माको अपना रक्षक मानता हुआ आराधना करता है, तब जिस रसकी अनुभूति होती है, उसे शान्त रस कहते हैं।

जीवात्मा निर्गुण निर्विकार ब्रह्मका ध्यान करता है, तो उसे भगवत्साक्षात्कार कहते हैं। जहाँ न सुख है, न दुःख, न द्वेष है और न मत्सर है; सब प्राणियोंके प्रति सम बुद्धि होती है, वह शान्त रस कहलाता है। ज्ञानकी अपेक्षा कर्मफलका त्याग श्रेष्ठ है और त्यागसे तत्काल ही परम शान्ति होती है। इस प्रकार शान्तिको ज्ञान-ध्यानादिका चरम फल कहा गया है।

विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें इस रसका लक्षण इस प्रकार बताया गया है—

नास्ति यत्र सुखं दुःखं न द्वेषो न च मत्सरः।
समः सर्वेषु भूतेषु स शान्तः प्रथितो रसः॥

इस रसके स्थायी भावके निरूपणमें आचार्योंमें मतभेद है। कोई इसका स्थायी भाव शान्ति, कोई रति, कोई-कोई धृति और कोई निर्वेद बतलाते हैं।

(२) दास्य रस—दास्य भाव पाँचों ही रसोंका प्राण है। चाहे शान्त हो या वात्सल्य, सख्य हो या शृंगार, सभी रसोंमें यह ऐसा समाया रहता है; जैसे

कायामें प्राण समाये रहते हैं। प्राण न रहें तो काया कितनी भी सुन्दर क्यों न हो, उसकी उपयोगिता नहीं, उसी प्रकार दास्य न हो तो किसी रसकी सिद्धि नहीं। यह स्फटिकमणिका बना हुआ ऐसा पात्र है, जिसमें जैसा भी रंग डाला जाय, उसी रंगका प्रतिभासित होने लग जायगा। जैसे पात्रके बिना द्रव पदार्थ नहीं ठहर सकता, उसी प्रकार दास्यके बिना कोई रस नहीं ठहरता। नारद पांचरात्रमें कहा गया है—

दासभूताः स्वतः सर्वे ह्यात्मानः परमात्मनः।
दास्यैनैव भवेन्मुक्तिः अन्यथा निरयं व्रजेत्॥

तात्पर्य यह कि सभी जीवात्माएँ परमात्माकी सहज दासभूता हैं। विश्वामित्र और वसिष्ठ मुनिजन भी इसीलिये परमात्माके दास्यकी ही कामना करते हैं।

वे संहिता साहित्यमें '**रामस्य दासोऽस्म्यहम्**' कहते नहीं अघाते। देवर्षि नारदका उद्घोष है कि—

दासोऽस्मि शेषभूतोऽस्मि तवैव शरणं गतः।
अपराधितोऽहं दीनोऽहं पाहि माम् करुणाकर॥

गोस्वामिपादका तो दास्यभाव विख्यात है—

सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि॥

तथा—

सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात यह ओर निबाहू॥

पंचरसाचार्य स्वामी श्रीरामहर्षणदासजी महाराजने प्रेमवल्लरीमें कहा है—

भैया! मैं तो अपने प्रभु को गुलाम।
करत गुलामी कछुक न चाहूँ, सेव करब मम काम।
सहज स्वरूप दास पन मेरा, दासहिं मेरो नाम॥
दास धर्म मय जीवन पद्धति, प्रेम पगी अठयाम।
सकल भाँति कैंकर्य निपुणता, वकस दिये सियराम॥
स्वामि गोत्र में गोत्रित ह्वैगो, तजि भव भाव तमाम।
चरण कमल निरखत निशि वासर, जो शाश्वत सुख धाम॥
'हर्षण' नेह निबाहब प्रभु बल, चाहत मन तजि काम।

(प्रेमवल्लरी १३३)

दासोंके अनेक भेद रस-साहित्यमें पाये जाते हैं। जैसे अयोध्याके दास, मिथिलाके दास, अनुचर, सहचर, सुहृद् एवं मधुर दास। इन्हींको पूर्वाचार्योंने अधिकृत दास, आश्रित दास, पार्षद दास एवं अनुगामी नामोंसे पुकारा है। आश्रित दासोंकी तीन श्रेणियाँ हैं—शरणागत, ज्ञानी एवं सेवानिष्ठ। इस रसका स्थायी भाव प्रीति है। यही जब आलम्बन, उद्दीपन, विभाव, अनुभाव आदिके द्वारा सुपुष्ट होता है, तब दास्य रसके नामसे पुकारा जाता है।

(३) वात्सल्य रस—प्रभुके साथ माता-पिता, बड़े भाईके रूपमें या गुरुजनके रूपमें स्वयंको प्रतिष्ठित अनुभव करना या अपनेको उनके पुत्र, अनुज या शिष्य-रूपमें मानना वात्सल्यभाव है। श्रीदशरथ, कौसल्या, श्रीजनक, सुनयना, श्रीवसिष्ठ, विश्वामित्र आदिकी श्रीरघुनन्दनमें वात्सल्यरस ही मुख्य भावना थी। व्रजभावकी उपासनामें नन्द, यशोदा, श्रीवृषभानुराय, श्रीमती कीर्तिजी आदि सभी वात्सल्य-रसोपासनामें ही सर्वदा निमग्न रहते थे। श्रीमिथिलेशकुमार अपनी अनुजा श्रीसियाजूको अपना वात्सल्य लुटाते अघाते नहीं। श्रीलक्ष्मीनिधि रत्नपीठिकामें श्रीसियाजूको गोदमें लिये हुए दुलार कर रहे हैं। श्रीचन्द्रकला, चारुशीला, सुषमा, हेमा, भानुकुला इत्यादि बहनें भी समीप ही हैं, कोई उनसे लिपट रही हैं, कोई उनकी दाहिनी तो कोई बायीं भुजाको पकड़े हुए हैं। आकाश-मण्डलमें देवतागण इस दृश्यको देख पुष्प-वर्षण कर रहे हैं—मूल स्वरोंमें आस्वादन प्राप्त करें।

रतन पीठ राजत लक्ष्मीनिधि, रुचिर सीय निज गोद लिये,
कबहुँ चूँमि मुख हिये लगावत, कबहुँ विलोकत नयन दिये।
कबहुँ अँगुरि निज पान करावत, कबहुँ दुलारत प्रेम प्रिये॥
चंद्रकला सुषमादिक हेमा, लिपटि रहीं किलकारि किये।
दखिन भाग श्रीभानु दुलारी, मुख पर मुख धरि लगति हिये॥
हेमा पृष्ठभाग ह्वै ठाढ़ी, चहति चढ़न सिर करहिं दिये।
शीला चारु दहिन भुज पकड़े, सुभगा हर्षित वाम लिये॥
औरहुँ अनुजा सब दिशि घेरे, भइया गोदहिं आस लिये।
बरसि सुमन सब देव सराहत, लक्ष्मीनिधिहिं प्रणाम किये॥
'दास रामहर्षण' सब भगिनिन, सेवत प्रेम पियूष पिये।

(लीलासुधासिंधु १८५)

श्रीमिथिलेशकुमार अपनी अनुजा श्रीसीताको खेलनेके लिये विविध प्रकारके खिलौने लाते हैं, तो कभी मुख चूमते हैं, उन्हें छातीसे लगाते हैं तो कभी चकरी और भौरा खेलना सिखलाते हैं—

श्रीप्रेमरामायण महाकाव्यमें उनका वात्सल्य अठखेलियाँ करता दिखायी देता है—

खेलति सीय सखिन के संगा,
विविध भाँति क्रीड़न रति रंगा।
खेलन योग अनूपम साजा,
जोरि धरी प्रिय भ्रात सुराजा॥
कबहुँ भ्रात लै सिय कहँ गोदी,
विचरहिं गृह वाटिका समोदी।
कबहुँक क्रीड़न गेंद बतावैं,
कबहुँक भँवरा फेंकि दिखावैं॥
मातु पिता की गोद कहुँ, कबहुँ भ्रात की गोद।
बैठि सिया सुख सानहीं, भोजन करैं सुमोद॥

(मिथिलाकाण्ड १४६)

(४) सख्य रस—ईश्वर और जीव दोनों अनादि सखा हैं। भगवती श्रुति कहती है कि '**द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया**' अत: दोनोंकी प्रीति भी परस्पर पावन सुहावन एवं पुरातन है।

सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू। ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू॥
इन कर प्रीति परस्पर पावन। कहि न जाय मन भाव सुहावन॥

(रा०च०मा०)

ब्रह्म राम निर्गुण एवं सगुणके आधार, कार्य-कारणसे परे, सुखस्वरूप, रसमय, परमार्थस्वरूप, अविचल, अकथ, अनादि और अनुपमेय हैं। वे प्रभु तीन धाममें विराजते हैं, जिनके नाम चिदाकाश, परव्योम एवं अक्षरधाम या अच्युतधाम हैं, जिसे श्रुतियाँ अव्यक्त कहती हैं, उसे साकेत या गोपुर कहते हैं। उनका दूसरा धाम विराट् स्वरूप है, जिसके रोम-रोममें अनन्त ब्रह्माण्ड प्रतिष्ठित हैं, जिसके नेत्र, कर्ण, मुख, हाथ और पाँव सभी दिशाओंमें हैं। तीसरा धाम जीवका शरीर है। देहरूप पुरमें शयन करनेके कारण इन्हें पुरुष कहा जाता है। विषय इन्द्रिय, इन्द्रियोंके देवता और स्वयं जीव भी बिना उस पुरुषके चेतना प्राप्त नहीं कर सकते। सभी देहधारियोंके हृदयमें जीवके साथ वह ईश्वर भी विराजता है, जो जीवका सहज सुहृद् है।

सकल जीवधारी हृदय, ईश्वर जीव विराज।
सहज सुहृद एक एक के, सखा रसिक रस राज॥

जीव अपने इस सहज सनेहीको विस्मरण करके संसारमें भटकता है, इसीलिये दारुण दु:खका भाजन होता है। जब चित्तवृत्तियोंका निरोध हो जाता है तथा मनकी चंचलता मिट जाती है, तब सहज सुहृद्का स्वरूप दिखायी देता है। फिर तो—

सखा सखा मिल प्रेमहि फूले। रस मय बनहि रसहिं महँ झूले॥

इस सख्यरसके विविध भेदोपभेदोंका वर्णन रसिकोंके रसग्रन्थोंमें प्राप्त होता है। सामान्यतया इस सख्यरसकी कई श्रेणियाँ कही जाती हैं। सुहृद्सखा, प्रिय सखा और नर्म सखा। उनमें भी मिथिलाके सखा, अयोध्याके सखा, वनके सखा तथा रणके सखा आदि हैं।

(५) श्रृंगार रस—श्रृंगारको रसराज कहा जाता है। इसे ही मधुररस एवं उज्ज्वलरसके नामसे पुकारा जाता है। श्रृंगार एवं सख्य यद्यपि दोनों मित्र रस हैं, फिर भी रसिकोंने दोनोंको ही अपने रसाग्रहवशात् पृथक्-पृथक् रसराजत्वके सिंहासनमें प्रतिष्ठित करनेका प्रयास किया है। श्रृंगाररसके अनुसार जीवात्मा परमात्माकी प्रिया, प्रेयसी या पत्नी है। यह भाव अष्टयामीय कैंकर्यमें प्रविष्ट होता है। यह श्रृंगाररस जिसके आलम्बन उद्दीपन स्थायी भाव संचारी भाव लौकिक कामके ही अनुरूप भासित होते हैं। ऊपरसे तो ये ऐसे प्रतीत होते हैं, जैसे काम और प्रेम दोनों एक ही हैं, परंतु इन दोनोंका स्वरूप प्रकृति और स्वाद सर्वथा विपरीत होता है। उदाहरणके लिये जैसे—फिटकिरी और मिश्रीके ढेले रूप-रंग-आकार और प्रकारमें एक-जैसे दीखते अवश्य हैं, परंतु दोनोंके गुण-धर्म-प्रभाव एवं स्वादमें सर्वथा वैपरीत्य होता है। दोनोंमें आकारको छोड़कर किंचित् भी एकरूपता नहीं है। एक अल्प है, दूसरा अनल्प। एक नाशवान् है तो दूसरा अमर। एक असार है तो दूसरा सारका भी सार।

भक्तिके पाँचों रस स्वत: पूर्ण हैं। श्रृंगारको यद्यपि काव्यके नौ रसोंमें रसराज कहा गया है और रसिक साधनामें भी उसे सर्वोच्च स्थान दिया गया है, किंतु भाव भक्तिमें वह अन्य चार रसोंके समान ही है, साधकके लिये सभी रसोंकी उपासना करना सम्भव नहीं, उसे किसी एक रसका आश्रय लेकर ही अपने इष्टकी ओर बढ़ना पड़ता है।

अतः शिष्य साधक भगवत्-प्राप्त रससिद्ध सद्गुरुके द्वारा उपदिष्ट रसविशेषको मुख्य तथा अन्य रसोंको गौण मानता है। शृंगार और सख्य रसके साधक अपने-अपने साध्य रसको अंगी और अन्य रसोंको उसका अंग बताते हैं। शृंगारी भक्त माधुर्यको अंगी और शेषको उसका अंग मानते हैं।

यह रस-रहस्य रसिकोंके हृदय-गुफामें अन्तर्भुक् है, वह न वाणीका विषय है और न लेखनीके द्वारा तत्त्वतः लिखा जा सकता है। रस-विवेचन रस-ब्रह्मके द्वारा भी पूर्णतः समझाया नहीं जा सकता; क्योंकि रस-ब्रह्म और रस-विवेचन दोनों अनन्त हैं।

'भलो भलाइहि पै लहइ'

(पूज्य स्वामी श्रीसंवित् सुबोधगिरिजी महाराज)

रूसका बड़ा भारी विद्वान् था वरान्निकोव। उसने अपने जीवनके २५-३० वर्ष लगाकर पहले वाल्मीकि-रामायणका फिर तुलसी-रामायणका रूसी भाषामें अनुवाद किया। अनुवाद चल रहा था। द्वितीय महायुद्ध शुरू हो गया। जर्मनीने लेनिनग्राडपर हमला कर दिया। तब वह स्टालिनके पास जाकर बोला—मुझे कलम छोड़कर बन्दूक उठानी पड़ेगी। उसने पूछा—क्यों? वरान्निकोवने कहा—देशपर हमला हो गया है, देशकी रक्षा करनी है। उसने कहा—जाओ वरान्निकोव! हमारे पास देशके रक्षक बहुत हैं, पर हमारे पास दूसरा वरान्निकोव नहीं है, जो तुलसी-रामायणका अनुवाद कर सके। जाओ, तुम अपना अनुवाद करो। वरान्निकोवने कहा—मातृभूमिपर हमला हो गया है, उसकी रक्षा मैं नहीं करूँगा क्या? उसने कहा—हमारे पास रक्षक बहुत हैं, यह देशकी रक्षासे भी अधिक महत्त्वका कार्य है, तुलसी-रामायणका अनुवाद। यह कार्य दूसरा कोई नहीं कर सकता, तुम्हीं कर सकते हो।

तो मैं कैसे करूँ? तोपें छूट रही हैं, दिन-रात बमबारी हो रही है, शोर मचा हुआ है, इसमें शान्तिपूर्ण काम नहीं कर सकता। तो उसने कहा—अच्छा! इसका प्रबन्ध मैं करता हूँ। उसने एक सेनाकी टुकड़ीको आदेश देकर उसकी सारी लाइब्रेरी अजरबेजान (या अरबैजान) जहाँ रूसकी सीमा ईरानकी सीमासे लगती है, काकेशश पर्वतके पास एक शान्तिपूर्ण स्थानमें भिजवा दी। तब उसने वहाँ अपना अनुवाद कार्य पूरा किया।

अनुवाद पूरा करनेके बाद वरान्निकोवने अपने बेटेको बुलाया। कहा—बेटा! तुम मेरा श्राद्ध करोगे? उसने कहा—पिताजी! श्राद्ध क्या होता है? उसने कहा—भारतके बच्चे अपने बड़ोंकी स्मृतिमें श्रद्धा समर्पित करते हैं, उसको श्राद्ध कहते हैं। तो उसने कहा—मुझे क्या करना होगा? उसने कहा—मेरा तुलसी-रामायणका अनुवाद छपवा देना और मेरी समाधिपर एक पत्थरकी शिला लगाकर तुलसी-रामायणकी निम्न पंक्तियाँ भी अंकित करवा देना। ऊपर देवनागरी लिपिमें, उसके नीचे रूसी भाषामें उसका अनुवाद, अर्थ छपवा देना। उसने कहा—यह क्यों? उसने कहा—इसमें बड़ा रहस्य छिपा हुआ है? उसने पूछा—क्या रहस्य छिपा है पिताजी? रहस्य यह है कि जिन्दगीभर मुझे कम्युनिस्ट लोग ताना मारते रहे हैं कि तुम कम्युनिस्ट देशमें जन्मे, कम्युनिस्ट आत्मा-परमात्मा, पुनर्जन्म नहीं मानते। धर्म-कर्म नहीं मानते और तुम कम्युनिस्टोंके देशमें जाकर, रहकर भारतकी एक दकियानूसी किताबके अनुवादमें सारी जिन्दगी तबाह कर रहे हो। तुलसी-रामायणके अनुवादमें जीवन बर्बाद कर रहे हो।

तुम इतने बड़े विद्वान् होकर और कोई बड़ा काम कर सकते थे, देश-समाजकी सेवा कर सकते थे। तुम तुलसीके पीछे अपना जीवन नष्ट क्यों कर रहे हो? मैं उनको कुछ उत्तर नहीं देता था। मैं कहता—अभी काम करने दो, बादमें जवाब दूँगा? अब मेरी समाधि उसका जवाब देती रहेगी। उनकी समाधिपर तुलसीदासकी यह चौपाई अंकित है, जिसे वहाँकी सरकारने साकार किया है—

भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरता गरल सराहिअ मीचु॥

(रा०च०मा० १।५)

अर्थात् भला भलाई ही ग्रहण करता है और नीच नीचताको ही ग्रहण किये रहता है। अमृतकी सराहना अमर करनेमें होती है और विषकी मारनेमें।

आत्मज्ञानसे ही मुक्ति

(श्रीदयानन्दजी यादव)

मानव-जीवनका अन्तिम लक्ष्य मुक्ति है; क्योंकि मनुष्य-शरीर कर्मभोग, सुख-दु:खसे ऊँचे उठकर मुक्तिकी प्राप्तिके लिये ही मिला है, अत: इसको कर्मयोनि नहीं बल्कि साधनयोनि समझना चाहिये। आत्माका जीवभाव नित्य है; क्योंकि आत्माको मन-बुद्धिके भ्रमसे ही जीवभावकी प्राप्ति हुई है और यह जीवात्मा मन-बुद्धिसे बँधा होनेके कारण ही जन्म-मरणरूप संसार-चक्रसे निवृत्त नहीं हो पाता। मनका काम ध्यान करना है, इसीलिये यह मन (चित्त) संसारमें सबका ध्यान करता है—माँका, बापका, सन्तानका, पतिका, पत्नीका, पड़ोसीका—और तो और दुश्मनका भी ध्यान करता है। लेकिन परमात्मा (आत्मा)-का ध्यान नहीं करता; क्योंकि आत्मा मनसे बहुत दूर है। इसके लिये कठोपनिषद्में आया है—

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः॥

वेद कहता है इन्द्रियोंसे परे उनके विषय, विषयोंसे परे मन, उससे परे बुद्धि, उससे परे आत्मा, उससे परे माया और मायासे भी परे ब्रह्म (परमात्मा) है। मन तो नित्य निरंतर इन्द्रियों और उनके विषयोंके सम्पर्कमें रहता है, जबकि आत्मा इन मन-बुद्धिसे परे है और अपने दिव्य स्वरूपमें स्थित रहता है। अत: इस दिव्य आत्माकी मुक्ति तथा इस शरीरके पुनर्जन्मसे छुटकारा पानेके लिये आत्मज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। आत्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये निम्नलिखित बातें महत्त्वपूर्ण हैं—

१. मनुष्य-शरीर—परमात्माद्वारा सृजित इस जंगम सृष्टिमें मानव-शरीर सर्वोत्कृष्ट रचना है, जो अन्य योनियोंसे इसलिये प्रधान है; क्योंकि परमपिताने इसको विवेक प्रदान किया है। अत: मानव-शरीरके लिये श्रीरामचरितमानसमें लिखा है—

नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही॥

इस मानव-शरीरद्वारा पुरुषार्थ और साधन करके साधक जीवनके अन्तिम लक्ष्य मुक्तिको प्राप्त कर सकता है। अत: इस उत्कृष्ट मानव-जीवनको व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिये और निरन्तर सद्गुरुके सान्निध्यमें रहकर सावधानीपूर्वक साधना करनी चाहिये।

२. गुरुप्राप्ति—मानव-जीवनके अन्तिम लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये गुरुका सान्निध्य मिलना बहुत जरूरी है। शास्त्रोंने गुरुके अनेक गुणोंका बखान किया है, लेकिन सबका सार है कि गुरु श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ हो, जो हमें वेदोंका तत्त्वज्ञान करा सके तथा भगवान् क्या है? जीव क्या है? माया क्या है? मन क्या है? बुद्धि क्या है? बन्धन क्या है? भगवत्प्राप्ति कैसे होगी? संसारका सुख कैसा है? एवं मोक्ष कैसे मिल सकता है? आदि अनेक जिज्ञासाओं और शंकाओंको शान्त कर सके। ऐसे गुरुके मार्गदर्शनमें ही साधकको प्रेमकी पिपासा अर्थात् नामीको पानेकी व्याकुलता और तड़प पैदा होती है। ऐसे गुरुके लिये भागवतमहापुराणमें भी आया है—

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥

(श्रीमद्भा० ११। ३। २१)

अर्थात् गुरुदेव शब्दब्रह्म—वेदोंके पारदर्शी विद्वान् हों और साथ ही परब्रह्ममें परिनिष्ठित तत्त्वज्ञानी हों ताकि अपने अनुभवके द्वारा प्राप्त हुई रहस्यकी बातोंको बता सकें।

ऐसे गुरुके सम्पर्कमें आकर साधक नाम-स्मरण, मालाजप, नवधाभक्ति, शरणागति आदिद्वारा साधना करके मन और इन्द्रियोंका वशीकरण करता है। इस इन्द्रियनिग्रहसे ही अन्त:करण (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार)-का वर्तन शुद्ध होकर दिव्य हो सकता है। इस दिव्य अन्त:करणमें ही श्रद्धा-विश्वास, भक्ति, सत्संग, साधनाका गुरुमन्त्रद्वारा शक्ति-आधान किया जा सकता है।

इस प्रकार शक्ति-आधानसे साधकके काम-क्रोधादि षड्रिपुओंका उन्मूलनकर जीवकी माया-निवृत्ति, त्रिगुण (सत्त्व, रज, तम), त्रिकर्म (प्रारब्ध, संचित और

क्रियमाण), त्रिताप (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक), पंचक्लेश (राग, द्वेष, अस्मिता, अभिनिवेश और अविद्या) और पंचकोश (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय) आदिकी भी निवृत्ति हो जाती है, जिससे साधकको गुरुके वचनमें अटल विश्वास हो जाता है। इसके लिये आदि जगद्गुरु शंकराचार्य भी लिखते हैं—

गुरुवेदान्तवाक्येषु दृढो विश्वासः श्रद्धा।

(विवेक-चूड़ामणि)

इस प्रकार गुरुकी शरण और उनके सान्निध्यमें साधक अपनी मुक्तिके साधन अपना सकता है।

३. साधन-चतुष्टय—आत्मज्ञानके लिये साधक अपनी साधना साधन-चतुष्टयकी मददसे लगातार जारी रखता है। पहला साधन—नित्यानित्यवस्तुविवेक, दूसरा साधन—सुख भोगोंमें वैराग्य, तीसरा साधन—सम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान—ये छः सम्पत्तियाँ और चौथा साधन—अहंकार आदि अज्ञानकल्पित बन्धनोंको त्यागनेकी इच्छा-मुमुक्षुता। इतना सब करनेपर भी साधकको हर समय सावधान रहकर श्रेयमार्गकी ओर ही अग्रसर होना चाहिये; क्योंकि यह मार्ग ही उसे आनन्दप्राप्तिकी ओर ले जानेवाला है। जबकि प्रेयमार्ग साधकको पुनः मायारूपी जगत्में धकेल देता है।

मनुष्यमें धन, धर्म, भोग और मुक्ति—ये चार प्रकारकी चाहना हुआ करती है। इन्हीं चारोंको अध्यात्म-जगत्में पुरुषार्थ-चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष)-की संज्ञा दी जाती है। धर्मसे तात्पर्य है—सकाम या निष्काम भावसे यज्ञ, तप, दान, व्रत, तीर्थ आदि करना, धनको अर्थ कहते हैं। यह दो प्रकारका होता है। स्थावर और जंगम तथा सांसारिक सुख भोगोंको काम कहते हैं। ये आठ प्रकारके होते हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मान, बड़ाई और आराम; जबकि मोक्षका बहुत व्यापक रूप है। जिसमें वासनाकी क्षीणता, आत्मसाक्षात्कार, तत्त्वज्ञान, कल्याण, उद्धार, मुक्ति, भगवद्दर्शन, भगवत्प्रेम तथा अध्यास (अहं या मम भावका त्याग) ही मोक्ष मार्गकी सीढ़ियाँ हैं।

इस मार्गकी सबसे बड़ी और प्रबल बाधा काम (कामना) है। यदि धर्मका पालन कामनापूर्तिके लिये किया जाय तो वह धर्म कामनापूर्तिके बाद नष्ट हो जाता है। और इसी प्रकार जब अर्थको कामनापूर्तिमें लगाया जाता है तो वह भी कामनापूर्तिके बाद नष्ट हो जाता है। इसीलिये भगवान् कृष्णने गीतामें कामको 'महाशन' (बहुत खानेवाला) बतलाते हुए इस वैरीके त्यागका उपदेश किया है—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

(३। ३७)

अतः साधक यदि मुक्तिप्राप्ति (आत्म-साक्षात्कार) करना चाहता है तो उसे आत्मजिज्ञासा (अपनेको जाननेकी अभिलाषा) रख धर्मपूर्वक धन कमाकर परमात्मप्राप्तिकी इच्छा रखते हुए अपनी कामनाओंका त्याग करके उस धनको धर्मके अनुष्ठान और परहितमें खर्च करना चाहिये। इसके लिये श्रीरामचरितमानसमें गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं—

परहित बस जिन्हके मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

इस प्रकार दूसरोंके उपकारमें धन लगानेसे साधकका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और आत्मजिज्ञासुको आत्मज्ञानका मार्ग प्रशस्त होता है। अतः बन्धन आदिसे छूटने तथा बार-बार जन्म-मृत्युसे छुटकारा पानेके लिये कर्मकी गहन गतिको जानना बहुत आवश्यक है। कर्म तीन प्रकारके हैं—कर्म, अकर्म और विकर्म (निषिद्ध कर्म)। कर्म न करते हुए भी यदि मनुष्य ममता, आसक्ति और फलेच्छा रखता है। तो वह कर्म कर ही रहा है, यही कर्म जीवको बाँधता है, जबकि अकर्म (दूसरोंके लिये कर्म)-से जीवन्मुक्त होता है। इसके लिये भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं—

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥

(गीता ४। १६)

कर्म क्या है? अकर्म क्या है? इसका निर्णय करनेमें बुद्धिमान् पुरुष भी मोहित हो जाते हैं।

जब कामनाके वश होकर मनुष्य कर्म करता है तो वह बन्धनमें पड़ता है और कामनारहित कर्मसे वह मुक्तिको भी प्राप्त कर सकता है। इसके लिये सात्त्विक त्यागमें स्वरूपसे कर्म करना ही वास्तवमें अकर्म है। सात्त्विक त्यागमें कर्मोंसे सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है और निर्लिप्तताका भाव बना रहता है।

कर्मकी गति बड़ी गहन है। कोई भी मनुष्य क्षणभरके लिये भी कर्म किये बिना रह नहीं सकता। कर्म किसी कामनाकी प्रेरणासे होते हैं। कामनाके अधिक बढ़नेपर विकर्म होने लगते हैं, जो पापके जनक और नरकोंकी प्राप्ति करानेवाले हैं तथा कामनाके नष्ट होनेपर अकर्म होने लगते हैं, जो मुक्तिदायक हैं। अतः साधकको अपने सद्‌गुरुके सान्निध्यमें रहकर अपने कर्मोंपर ही अधिक ध्यान देना चाहिये, जिससे आत्मज्ञानकी प्राप्ति और मुक्तिका मार्ग प्रशस्त हो सके; क्योंकि कर्म ही मनुष्यके बन्धनका कारण है तथा बन्धन आदिसे छूटनेका भाव ही मुक्ति है। यह मुक्ति जीवकी वह दशा है, जिससे जीव बार-बार जन्म-मृत्युसे छुटकारा पा सकता है।

अतः परमात्माकी शरणागति, सद्‌गुरुका सान्निध्य, अन्तःकरणकी शुद्धि, कर्ममें अकर्मकी वृद्धिसे ही आत्मज्ञान पैदा होता है। यह आत्मज्ञान ही जीवनका सार और मुक्तिदायक है। अतः आत्मज्ञानसे ही जीवकी मुक्ति सम्भव है।

ईश्वरका न्याय

एक सेठ और एक परमहंसजी रेलमें जा रहे थे और वेदान्तकी बातें कर रहे थे। एक स्टेशनपर एक बाबूजीने अपना सूटकेस लाकर उस डिब्बेमें रखा। उसने परमहंस और सेठजीसे कहा कि कृपा करके मेरे इस सूटकेसकी आप निगरानी रखें, मैं अपना और सामान, बिस्तर आदि लेकर आता हूँ। गाड़ी छूट गयी और बाबू नहीं आये। दूसरे स्टेशनपर जब गाड़ी रुकी तो सेठने गार्डसे कहा कि एक बाबू अपना सूटकेस रख कर गये थे, वे अभीतक आये नहीं, शायद पिछले स्टेशनपर रह गये हैं। आप इसे उनकी तलाश करके दे देवें। उस सूटकेसको खोलकर देखा गया तो उसमें एक स्त्रीका शव रखा मिला। गार्डने पुलिसके द्वारा उस सेठको पकड़वा लिया। महात्माजीने बहुत कहा इस बेचारेका कोई दोष नहीं, परंतु पुलिसने नहीं माना कि यह निर्दोष है।

सेठने परमहंसजीसे कहा कि आप मेरे सम्बन्धियों, पुत्रोंको यह सूचना दे दीजिये कि तुम्हारा पिता इस तरह फँस गया है। इधर पुलिस सेठको जेलमें बन्द करनेके लिये ले गयी। महात्मा इससे बहुत व्यथित हुए। विचार करने लगे—'हे भगवान्! तेरे यहाँ इतना अन्याय, इस बेचारे निर्दोष सेठकी यह दुर्गति?' यह विचार करते हुए उनको नींद आने लगी और वे चिन्तामें सो गये।

स्वप्नमें उनके गुरुजी आये और कहने लगे—'तुम इसकी चिन्ता क्यों करते हो? भगवान्‌के यहाँ अन्याय नहीं। उस सेठने १५ वर्षपूर्व ऐसा ही काण्ड किया था। उसीका फल अब उसको मिल रहा है। उसको तो फाँसी भी हो जायगी।'

महात्माजीकी इतनेमें नींद टूट गयी और वे बहुत घबराये। यह मैं सपनेमें क्या देख रहा था? उनके मनमें आया कि चलें पता लगायें। अगले स्टेशनपर उतरकर वापस लौटे। सेठका पता लगाकर जेलमें पहुँच गये। उससे बात हुई। उसने महात्माजीको बतलाया कि मेरे पास एक आमका बाग था। उसमें चोर आकर आम तोड़ ले जाते थे। नौकर रोज-रोज आकर शिकायत करते। एक दिन मुझे गुस्सा आया और मैं रात्रिभर जागकर बागमें बैठा रहा। मैंने उसको पकड़ लिया और इतना मारा कि वह मर गया। मैंने डरसे कि कोई देखने न पाये, वहीं गड्ढा खोदकर लाशको गाड़ दिया और ऊपर घास-फूस रख दी।

यह सुनकर महात्माजीकी आँखें खुल गयीं। उनका दृढ़ विश्वास हो गया कि पाप और पुण्यका फल ईश्वर कभी-न-कभी दे ही देता है। [प्रस्तुति—श्रीशिवकुमारजी गोयल]

हमारे आन्तरिक शत्रु—

यह 'और' 'और'की तृष्णा!

[लोभ, कारण और निवारण]

(पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

आप मानें न मानें, मैं चोरी और परिग्रहको एक-सा ही मानता हूँ।

मेरे लेखे दोनों एक ही थैलीके चट्टे-बट्टे हैं।

'और' 'और' की तृष्णा ही दोनोंका मूल है।

× × ×

चोरी स्थूल भी होती है, सूक्ष्म भी।

परिग्रह स्थूल भी होता है, सूक्ष्म भी।

लोभ दोनोंके भीतर घुसा बैठा है।

× × ×

मेरे पास जो है सो बना रहे।

मेरे पास जो नहीं है सो मुझे मिल जाय।

मुझे अधिक-से-अधिक मिले।

मुझसे अधिक किसीके पास न रहे।

जिसके पास मुझसे अधिक हो, उसका नाश हो जाय।

दूसरेको न मिले, मुझे अवश्य मिले।

दूसरेको न मिले, मुझे मिले या न मिले।

दूसरेको मिले तो नष्ट हो जाय, मुझे मिले या न मिले।

लोभके ऐसे न जाने कितने प्रकार हैं। मनुष्य रात-दिन इन्हीं चिन्ताओंमें फँसा, डूबता-उतराता रहता है।

× × ×

'और' 'और' की यह तृष्णा ही मनुष्यसे चोरी कराती है, परिग्रह कराती है। और क्या नहीं कराती?

इसी तृष्णाके चलते मनुष्य संसारकी असंख्य भोग-सामग्रियाँ जुटाता है, एकके बजाय अनेक बीबियाँ रखता है, कब्रमें पैर लटके रहनेपर भी बूढ़े बाबा भोग-सुखमें रचे-पचे रहते हैं।

इसीके चलते अनमेल विवाह होते हैं, असंगत विवाह होते हैं, दहेज लिया जाता है, शोषण होता है, अत्याचार होता है, धोखा और विश्वासघात होता है। संसारके असंख्य पापोंकी जड़ यह तृष्णा ही है।

× × ×

इसी तृष्णाके कारण मुट्ठीभर लोग लखपती, करोड़पती बन बैठते हैं और लाखों, करोड़ों व्यक्ति दाने-दानेको मुहताज रहते हैं। खाना-पीना, कपड़ा-लत्ता, जर-जमीन—सबको अधिकाधिक जुटानेकी तृष्णा सबको पागल किये बैठी है।

जितना प्राप्त है, जितना भगवान्‌ने दिया है, उतनेसे किसीको सन्तोष नहीं। सबको 'और' अधिक चाहिये, 'और' अधिक चाहिये।

× × ×

एक शिक्षा-शास्त्री हैं। विद्वान् हैं। आपके पास पचासों फाउन्टेन पेन हैं। किसीमें काली स्याही है, किसीमें लाल। किसीमें नीली है तो किसीमें पीली। तरह-तरहकी स्याहियोंके लिये तरह-तरहकी कलमें। कोई काली कलम है, कोई बैगनी। कोई सफेद है तो कोई स्लेटी। किसीसे आप चेक बुकपर हस्ताक्षर करते हैं, किसीसे दफ्तरके कागज-पत्रोंपर। किसीसे सगे-सम्बन्धियोंको पत्र लिखते हैं तो किसीसे मित्रोंको। गरज, कीमती कलमोंका आपका यह परिग्रह तमाशेकी चीज बन गया है।

आप हँसेंगे कि एक व्यक्ति और पचासों कीमती कलमें! पर क्या कीजियेगा, हम-आप सभी तो एक ही नावपर सवार हैं। सभी तो परिग्रह बढ़ानेके फेरमें हैं। जरूरत रहती है एक चीजकी, जुटाते हैं अनेक चीजें। हमारे घरोंमें बिना जरूरतकी सैकड़ों, हजारों चीजें भरी रहती हैं और रात-दिन हम उनकी संख्या बढ़ाते ही चलते हैं।

× × ×

एक आदमी कितना खायेगा, कितना पहने-ओढ़ेगा, कितनी चीजोंका उपभोग करेगा?

सबकी एक मात्रा होगी।

पर नहीं। हमें जरूरतसे दुगुना-चौगुना ही नहीं, अनन्तगुना चाहिये।

'चार हाथकी जगह चाहिये,
घरमें क्या, जंगलमें क्या?'

किंतु चार हाथसे कहीं हमारा जी भरता है। हमें बड़ा-सा ड्राइंग-रूम चाहिये, स्टडी-रूम चाहिये, गेस्ट-हाउस चाहिये, भारी-सा आँगन और सहन चाहिये। किसीमें हम चाय पियेंगे, किसीमें ताश खेलेंगे, किसीमें लोगोंसे मुलाकात करेंगे। किसीमें महफिल जमायेंगे। किसीमें कुछ करेंगे, किसीमें कुछ। और इतना ही नहीं हमें एक बँगला दिल्लीमें चाहिये, एक कलकत्तामें, एक बम्बईमें तो एक शिमलामें। काशी और हरिद्वार, प्रयाग और मथुरामें कोठी हुए बिना हमारा काम ही कैसे चल सकेगा?

× × ×

दूसरेकी चीज उसकी अनुमतिके बिना लेना चोरी है।

धोखा देकर, ठगकर किसीका माल डकार जाना चोरी है।

सेफ्टीरेजरसे किसीकी जेब साफ कर देना चोरी है।

बहीखातेमें २ को ३ और ० को ४ बनाना चोरी है।

छातीपर पिस्तौल रखकर तिजोरीकी चाभी छीन लेना चोरी है।

जो चीज अपनी नहीं है, उसे अपनी बताना चोरी है।

दूसरोंसे छिपाकर कुछ ले लेना चोरी है।

राहमें पड़ी चीज उठा लेना चोरी है।

चोरीमें सिरकत करना चोरी है।

चोरीके ऐसे विभिन्न प्रकारोंको लोग पाप मानते हैं। पर ये सब स्थूल चोरियाँ हैं।

चोरियाँ सूक्ष्म भी होती हैं।

कोई पिस्तौल और बन्दूकसे चोरी करता है, कोई कलम, दावात और सेफ्टीरेजरसे। कोई सेंध मारता है, कोई ताला तोड़ता है।

कोई मालिकके काममें कमी करता है।

कोई मजदूरको पूरी मजदूरी नहीं देता।

कोई किसीके हकका पैसा छीनता है, कोई किसीकी चीजपर नीयत डुलाता है। कोई किसीकी सम्पत्तिको अपनी बताता है, कोई किसीके विचारपर, किसीकी कृतिपर अपनी मुहर लगाता है।

मजदूर मालिकका धन चुराता है।

पूँजीपति मजदूरका श्रम चुराता है।

वकील उसकी वकालत करता है।

न्यायाधीश उसकी लूटको जायज बताता है!

× × ×

इस प्रकारकी असंख्य चोरियाँ हम-आप दिनदहाड़े करते हैं। यह बात दूसरी है कि किसी चोरके शरीरपर फटे चिथड़े हैं, कोई सफेदपोश है। किसीका जुर्म जुर्म है, किसीका जुर्म जुर्म माना ही नहीं जाता। किसीको उसके लिये जेलकी हवा खानी पड़ती है, कोई चोरी करके भी समाजमें शानसे मूछोंपर ताव देता घूमा करता है।

× × ×

दूसरेकी चीज बिना उसकी अनुमतिके लेना चोरी है—इस बातको तो सभी मानते हैं, लेकिन गाँधीजी तो उससे भी एक कदम आगे बढ़कर कहते हैं कि जरूरतके बिना किसीकी चीज उसकी अनुमतिसे भी लेना चोरी है।

सही है उनका यह दावा।

पेट भरा है, पर बागबाजारके रसगुल्ले देखकर मेरे मुँहमें पानी भर आता है तो यह चोरी नहीं क्या है?

बिना जरूरतकी चीजके लिये लालच उठना चोरी है।

कल क्या मिलेगा, इसकी कल्पना करना चोरी है।

गाँधीजीने कहा है, 'जो चीज मूलमें चोरीकी नहीं है, पर अनावश्यक है, उसका संग्रह करनेसे वह चोरीकी चीजके समान हो जाती है। सत्यशोधक अहिंसक परिग्रह नहीं कर सकता।'

× × ×

आजके अर्थयुगमें पैसा ही सारे अनर्थोंकी जड़ है।

लोभ यों तो रूपका भी होता है, मान-सम्मान और नामका भी होता है, पर आज पैसेका लोभी ही लोभी माना जाता है। सबका मूल मन्त्र पैसा ही बन गया है। पैसेकी कद्र हदसे ज्यादा बढ़ गयी है। पामेला फ्रंकोका यह कहना सही है कि हर बहसमें पैसा आखिरी और लाजवाब दलील बनकर सामने आता है। 'आखिर दाम तो हमने दिये हैं न! तब तो हमारा दैवी अधिकार है।' बस, यह आखिरी बात मानी जाती है*।

*The offshore Light

पैसेका इतना अधिक महत्त्व बढ़ जानेसे ही आज चोरी और परिग्रह पैसेको ही लेकर हो रहा है।

× × ×

श्रीमद्भागवत (११। २३। १७-१८)-में पैसेके कारण १५ अनर्थोंकी बात कही गयी है—

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च॥
एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम्।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्॥

पैसेके कारण मनुष्य चोरी करता है।

हिंसा करता है।

झूठ बोलता है।

दम्भ करता है।

पैसेसे काम, क्रोध, मद, अहंकार आता है।

भेदबुद्धि पैदा होती है।

वैर बढ़ता है।

अविश्वास उत्पन्न होता है।

स्पर्धा होती है।

लम्पटता आती है।

जुआ खेला जाता है।

शराब-कबाब, मांस-मदिरा आदिका सेवन होता है।

× × ×

पैसेके लिये कौन-सा पाप नहीं किया जाता?

तभी तो श्रेयोऽर्थीसे कहा गया है कि वह पैसेको दूरसे ही नमस्कार करे।

× × ×

पैसा आया कि लोभ बढ़ा—***'जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई!'***

पैसा आया कि घमण्ड आया, अहंकार आया, पागलपन आया। पैसेकी गरमी प्रसिद्ध ही है—

कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय।
वह खाये बौरात है यह पाये बौराय॥

और मजा यह कि जिसे देखिये वही इस पागलपनके लिये उतावला बना फिरता है।

पैसेमें कोई सुख होता तब भी कोई बात थी।

न उसके कमानेमें सुख।

न उसकी हिफाजतमें सुख।

न उसके खर्च करनेमें सुख।

× × ×

पैसा कमानेके लिये दुनियाभरकी जिल्लत उठानी पड़ती है।

खून-पसीना एक कर देना पड़ता है।

बिना कान डुलाये बड़े बाबूकी घुड़कियाँ पी लेनी पड़ती हैं।

उनके बच्चोंतककी लुलखुरियाँ करनी पड़ती हैं।

फिर भी हमेशा डर लगा रहता है कि मालिक कहीं नाराज न हो जायँ। पता नहीं कब गुड्डी कट जाय। और आजके युगमें बेकारोंकी जो फजीहत है, वह किससे छिपी है।

बाबूजी पैसेके फेरमें न तो दिनको दिन गिनते हैं, न रातको रात। न घरवालीसे बात कर पाते हैं, न बच्चोंसे। नौकरोंका प्रेम ही उनके पल्ले पड़ता है!

किसान भी चार दाने पैदा करनेके लिये दुनियाभरका कष्ट भुगतता है। आँधी और तूफानमें, अँधेरी रातमें खेतपर अकेला पड़ा रहता है। लेंहड़ी चराता है।

× × ×

और पैसेकी रक्षा?

उसमें भी कम मुसीबत नहीं।

उचक्कों और लुटेरोंका डर, चोर-बदमाशों और डाकुओंका डर। दुश्मनोंका ही नहीं, दोस्तोंका भी डर। कब कौन माँग बैठे। दो तो रुपयेसे हाथ धो बैठो। माँगो तो दुश्मनी मोल लो। न दो तो वैसे ही दुश्मनी। पान-जैसा हाल। 'दो तो मुँह लाल न दो तो आँख लाल।'

× × ×

घरमें पैसा रखो तो लुटनेका डर। कब कौन आकर छातीपर चढ़ बैठे या गला टीप दे।

बैंकमें रखो तो यह डर कि कब उसका दिवाला पिट जाय। कब कोई जालसाजी करके रकम निकाल ले।

पैसेकी रक्षाके लिये नौकर-चाकर रखो, दरवान रखो। पुलिस और पहरेदार रखो। फिर भी हरदम

खटका। कहीं बेटा जहर न दे दे, भाई खोपड़ी न फोड़ दे! '**पुत्रादपि धनभाजां भीतिः!**'

× × ×

पैसेवालोंको पैसेकी हिफाजतकी इतनी चिन्ता रहती है कि न बेचारे आजादीसे घूम-फिर सकते हैं, न मस्तीसे सो सकते हैं, न निःशंक होकर खा-पी सकते हैं। सारी मस्ती, आजादी, हँसी-खुशी हवा हो जाती है।

× × ×

यह कहिये पैसेमें बड़ा सुख है तो किसी पैसेवालेका दिल टटोलकर देखिये। वहाँ दुःख-ही-दुःख भरा दीख पड़ेगा। अभावोंका दुःख उन्हें भी खाये डालता है। ईर्ष्या-द्वेष उन्हें खोखला किये देते हैं। प्रेमचन्दने 'गोदान'में रायसाहबके मुखसे पैसेवालोंकी मानसिक स्थितिका एकदम सही चित्रण किया है। अकिंचन होरीसे वे कहते हैं—

'तुम हमें बड़े आदमी समझते हो? हमारे नाम बड़े हैं, दर्शन थोड़े। गरीबोंमें अगर ईर्ष्या या वैर है तो स्वार्थके लिये या पेटके लिये। ऐसी ईर्ष्या और वैरको मैं क्षम्य समझता हूँ। बड़े आदमियोंकी ईर्ष्या और वैर आनन्दके लिये है। हम इतने बड़े आदमी हो गये हैं कि हमें नीचता और कुटिलतामें ही निःस्वार्थ और परम आनन्द मिलता है।'

'सम्पत्ति और सहृदयतामें वैर है। हम भी दान देते हैं, धर्म करते हैं, लेकिन जानते हो क्यों? केवल अपने बराबरवालोंको नीचा दिखानेके लिये। हमारा दान और धर्म कोरा अहंकार है, विशुद्ध अहंकार। हममेंसे किसीपर डिग्री हो जाय, कुर्की आ जाय, बकाया मालगुजारीकी इल्लतमें हवालात हो जाय, किसीका जवान बेटा मर जाय, किसीकी विधवा बहू निकल जाय, किसीके घरमें आग लग जाय, कोई किसी वेश्याके हाथों उल्लू बन जाय, या अपने असामियोंके हाथ पिट जाय तो उसके और सभी भाई उसपर हँसेंगे, बगलें बजायेंगे, मानो संसारकी सम्पदा मिल गयी है। और मिलेंगे तो इतने प्रेमसे, जैसे हमारे पसीनेकी जगह खून बहानेको तैयार हैं। मेरे दुःखको दुःख समझनेवाला कोई नहीं।'

'वह बड़ा आदमी ही क्या, जिसे कोई छोटा रोग हो। मामूली ज्वर भी हो जाय तो हमें सरसामकी दवा दी जाती है। मामूली फुंसी निकल आये तो वह जहरबाद बन जाती है। अब छोटे सर्जन और मझोले सर्जन तारसे बुलाये जा रहे हैं। मसीहुल मुल्कको लानेके लिये दिल्ली आदमी भेजा जा रहा है, भिषगाचार्यको लानेके लिये कलकत्ता। उधर देवालयमें दुर्गापाठ हो रहा है और ज्योतिषाचार्य कुण्डलीका विचार कर रहे हैं। तन्त्रके आचार्य अपने अनुष्ठानमें लगे हुए हैं। यमराजके मुँहसे निकालनेके लिये दौड़ लगी है। वैद्य और डॉक्टर इस ताकमें रहते हैं कि कब इनके सिरमें दर्द हो और कब उनके घर सोनेकी वर्षा हो।'

'......दुनिया समझती है कि हम बड़े सुखी हैं। हमारे पास इलाके, महल, सवारियाँ, नौकर-चाकर, कर्ज, वेश्याएँ क्या नहीं है? लेकिन जिसकी आत्मामें बल नहीं, अभिमान नहीं, वह और चाहे कुछ हो, आदमी नहीं है। जिसे दुश्मनके भयके मारे रातको नींद न आती हो, जिसके दुःखपर सब हँसें और रोनेवाला कोई न हो, जिसकी चोटी दूसरोंके पैरोंके नीचे दबी हो, जो भोग-विलासके नशेमें अपनेको बिलकुल भूल गया हो, जो हुक्कामके तलवे चाटता हो और अपने अधीनोंका खून चूसता हो, उसे मैं सुखी नहीं कहता। वह तो संसारका सबसे अभागा प्राणी है।'

× × ×

वस्तुतः पैसेवाला, जिसकी उस पैसेमें आसक्ति है, वह संसारका सबसे अभागा और दयनीय प्राणी है। पर लोभ और मोहकी महिमा तो देखिये, हम आप सभी ऐसे अभागे जीवनकी ही कामना करते हैं। कितना आकर्षक है 'और' 'और' की तृष्णाका यह जाल! उसमें फँसकर हम छटपटाते हैं, फिर भी उससे छुटकारेका कोई प्रयत्न नहीं करते! शराबकी तरह वह—***'छुटती नहीं है काफिर मुँहसे लगी हुई!'***

कुन्तीकी कृष्णभक्ति

(श्रीभगवानलालजी शर्मा 'प्रेमी')

श्रीकृष्णने सुदर्शन चक्रसे अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रका निवारण किया और परीक्षित्‌की रक्षा करनेके बाद वे द्वारिका पधारनेको तैयार हुए। कुन्ती मर्यादा-भक्ति हैं, साधन-भक्ति हैं। यशोदाका सारा व्यवहार भक्तिरूप था। प्रेमलक्षणा भक्तिमें व्यवहार और भक्तिमें भेद नहीं रहता। वैष्णवकी सारी क्रियाएँ भक्ति ही बन जाती हैं। प्रथम मर्यादा-भक्ति आती है। उसके बाद पुष्टि-भक्ति। मर्यादा-भक्ति साधन है, सो वह आरम्भमें आती है। पुष्टि-भक्ति साध्य है, अतः वह अन्तमें आती है।

भागवतमें नवम स्कन्धतक साधन-भक्तिका वर्णन है। दशम स्कन्धमें साध्य-भक्तिका वर्णन है। साध्य-भक्ति प्रभुको बाँधती है। पुष्टि-भक्ति प्रभुको बाँधेगी। उसकी कथा भागवतके अन्तमें आती है। हरेक व्यवहारको भक्तिरूप बनाये सो पुष्टि-भक्ति है।

भक्तिमार्गमें भगवद्वियोग सहन नहीं होता। भक्तिमें भगवान्‌का विरह सहन नहीं होता। वैष्णव वह है जो प्रभुके विरहमें जलता है।

द्वारिकानाथ द्वारिका जानेको तैयार हुए, कुन्तीका दिल भर आया। उनकी अभिलाषा है कि चौबीस घंटे मैं श्रीकृष्णको निहारा करूँ। मेरे श्रीकृष्ण मुझसे कहीं दूर न जायँ। जिस मार्गसे भगवान्‌का रथ जानेवाला था, वहीं कुन्ती आयीं और हाथ जोड़कर रास्तेमें खड़ी हो गयीं।

प्रभुने दारुक सारथीसे रथ रुकवाया और कुन्तीसे कहा कि फूफीजी, आप मार्गमें क्यों खड़ी हैं? वे रथसे नीचे उतरे। कुन्तीजीने वन्दन किया।

वन्दनसे प्रभु बन्धनमें आते हैं। वन्दनके समय अपने सारे पापोंको याद करो। हृदय दीन और नम्र होगा। सूतजी वर्णन करते हैं।

नियम तो ऐसा है कि रोज भगवान् कुन्तीजीको वन्दन करते हैं, किंतु आज कुन्ती भगवान्‌को वन्दन कर रही हैं। भगवान्‌ने कहा कि यह आप क्या कर रही हैं? मैं तो आपका भतीजा हूँ। आप मुझे प्रणाम करो, यह शोभास्पद नहीं है।

कुन्ती कहती हैं कि मैं आजतक आपको अपना भतीजा मानती थी, किंतु आज समझमें आया कि आप ईश्वर हैं। योगीजन आपका ही ध्यान करते हैं। आप सबके पिता हैं।

कुन्तीकी भक्ति दास्यमिश्रित वात्सल्यभक्ति है। हनुमान्‌जीकी भक्ति दास्यभक्ति है। दास्यभक्तिके आचार्य हनुमान्‌जी हैं। दास्यभावसे हृदय दीन बनता है। अपने स्वामीको देखनेकी हिम्मत मुझमें नहीं है। मैं तो उनका दास हूँ। दास्यभक्ति अधिकारी महात्माको प्राप्त होती है। दास्यभक्तिमें दृष्टि चरणोंमें स्थिर करनी होती है। बिना भावके भक्ति सिद्ध नहीं हो सकती। ईश्वरके साथ कुछ भी सम्बन्ध जुड़ना चाहिये। मर्यादा-भक्तिसे दास्यभाव मुख्य है।

कुन्ती वात्सल्यभावसे कृष्णका मुख निहारती हैं। मेरे भाईका पुत्र, यही वात्सल्यभाव हुआ। मेरे भगवान् हैं—यह भी दास्यभाव ही है। चरण-दर्शनसे तृप्ति नहीं हुई, सो मुख देख रही हैं। कुन्ती भगवान्‌की स्तुति करती हैं।

नमः पंकजनाभाय नमः पंकजमालिने।
नमः पंकजनेत्राय नमस्ते पंकजाङ्घ्रये॥

जिनकी नाभिसे ब्रह्माका जन्मस्थान कमल प्रकट हुआ है, जिन्होंने कमलोंकी माला धारण की है, जिनके नेत्र कमलके समान विशाल और कोमल हैं और जिनके चरणोंमें कमलचिह्न हैं, ऐसे हे कृष्ण! आपका बार-बार वन्दन।

भगवान्‌की स्तुति रोज तीन बार करो—सुबहमें, दोपहरमें और रातको सोनेसे पहले। इसके अलावा सुख, दुःख और अन्तकालमें भी स्तुति करो। अर्जुन दुःखमें स्तुति करते हैं, कुन्ती सुखमें स्तुति करती हैं और भीष्म अन्तकालमें स्तुति करते हैं।

सुखावसाने, दुःखावसाने, देहावसाने स्तुति करो।

कुन्ती कहती हैं—प्रभुने हमें सुखी किया है। हमें कैसे-कैसे संकटोंसे उबारा? भगवान्‌के उपकारोंका वे स्मरण कर रही हैं। वे भगवान्‌के उपकारोंको भूली नहीं

हैं। मैं विधवा हुई, तब मेरी संतान नन्ही-सी थी। उस समय भी आपने ही मेरी रक्षा की थी।

सामान्य मनुष्य अति सुखमें भगवान्‌को भूल जाता हैं। जीवमात्रपर भगवान् अनेक उपकार करते हैं, किंतु वह सब कुछ भूल जाता है। परमात्माके उपकार भूलने न चाहिये। जब हम बीमारीसे अच्छे होते हैं तो अमुक औषधिसे बीमारी टली ऐसा मानते हैं। डॉक्टरने हमें बचाया ऐसा मानते हैं। किन्तु भगवान्‌का उपकार नहीं मानते हैं। विचार करो कि डॉक्टरकी दवाई और इंजेक्शनमें बचानेकी शक्ति कुछ है भी क्या? ना, ना, बचानेवाला तो कोई और ही है। डॉक्टरके पास जो बचानेकी शक्ति होती तो उसके घरसे कभी अन्तिम यात्रा निकलती ही नहीं।

बिना जलके नदीकी शोभा नहीं है, प्राणके बिना शरीर नहीं शोभा देता है, कुंकुमका टीका न हो तो सौभाग्यवती स्त्री नहीं सुहाती। इसी प्रकार पाण्डव भी आपके बिना नहीं सुहाते। नाथ! आपसे ही हम सुखी हैं।

गोपीगीतमें गोपियाँ भी भगवान्‌के उपकारका स्मरण करती हैं। गोपियाँ कहती हैं—

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद्
वर्षमारुताद् वैद्युतानलात्।
वृषमयात्मजाद् विश्वतोभया-
दृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः॥

यमुनाजीके विषमय जलसे होनेवाली मृत्युसे, अजगरके रूपमें खा जानेवाले अघासुरसे, इन्द्रकी वर्षा, आँधी, बिजली, दावानल आदिसे आपने हमारी रक्षा की है। कुन्तीजी याद करती हैं कि जब भीमको दुर्योधनने विष-मिश्रित लड्डू खिलाये थे, उस समय भी आपने ही उसकी रक्षा की थी। लाक्षागृहसे भी हमें बचाया। आपके उपकार अनन्त हैं। उसका बदला हम कभी चुका नहीं सकते। मेरी द्रौपदीको दु:शासन सभामें खींच लाया। उस समय दुर्योधनने कहा कि द्रौपदी अब अपनी दासी है। उसे निर्वस्त्र करो। दु:शासन वस्त्र खींचने लगा, किंतु भगवान् जिसे ढँकता है, उसे कौन उघाड़ सकता है। दु:शासन थक गया। लोग भी आश्चर्यमें डूब गये। सब सोचने लगे—

सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है,
सारी की ही नारी है कि नारी की ही सारी है।

जीव ईश्वरको कुछ भी नहीं दे सकता। जगत्‌का सब कुछ ईश्वरका ही है। भगवान् कहते हैं कि मेरा है वही मुझे देनेमें क्या बड़ी बात हुई? रोज तीन बार भगवान्‌की प्रार्थना करो कि हे नाथ! मैं आपका हूँ। मुझपर आपके अनन्त उपकार हैं। कुन्ती कहती हैं कि आपके उपकारका बदला मैं किस तरह चुकाऊँगी? मैं आपको बार-बार वन्दन करती हूँ। नाथ? हमारा त्याग न करो। आप द्वारिका जा रहे हैं, किंतु एक वरदान माँगनेकी मेरी इच्छा है। वरदान देकर आप चाहे चले जाइये। कुन्ती-सा वर कभी दुनियामें आजतक किसीने माँगा नहीं है और माँगेगा भी नहीं।

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्‌गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

हे जगद्‌गुरु! हमारे जीवनमें प्रतिक्षण विपदा आती रहे; क्योंकि विपदावस्थामें ही निश्चित रूपसे आपके दर्शन होते रहते हैं और आपके दर्शन होनेपर जन्म-मृत्युके फेरे टल जाते हैं। दु:खमें ही मनुष्यको सयानापन आता है। दु:खमें ही प्रभुके पास जानेका मन होता है। विपत्तिमें ही उनका स्मरण होता है। सो विपत्ति ही सच्ची सम्पत्ति है। मनुष्यमें प्रभुके बिना चैन आता है; क्योंकि वह भक्तिरसको समझा नहीं है। कुन्ती माँगती हैं कि बड़ी भारी विपत्तियाँ आती रहें, ऐसा वरदान दीजिये।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि यह आप क्या माँगती हैं! आपकी बुद्धि चकरा तो नहीं गयी है? आजतक दु:खके कई

प्रसंग आये हैं। अब सुखकी बारी आयी है। अब दुखी होनेकी इच्छा है? हर प्रकारका अभिमान छोड़कर जो दीन बनता है, वह भगवान्‌को प्यारा लगता है। कुन्ती दीन बनी हैं। नाथ! मैं जो माँग रही हूँ, वही ठीक है। दु:ख ही मेरा गुरु है। दु:खमें मनुष्य सयाना बनता है। दु:खसे जीवको परमात्माके चरणोंमें जीनेकी इच्छा होती है। जिस दु:खमें नारायणका स्मरण हो, वह तो सुख है, उसे दु:ख कैसे कहें? विपत्तिमें आपका स्मरण होता है, सो उसे मैं सम्पत्ति मानती हूँ।

सुख के माथे सिल परै नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दु:ख की पल पल नाम रटाय॥

हनुमान्‌जीने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा था कि आपके ध्यानमें सीताजी तन्मय हैं, इसीसे मैं कहता हूँ कि सीताजी आनन्दमें हैं।

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥

नाथ! जब आपका स्मरण-भजन न हो सके, वही सच्ची विपत्ति है, ऐसा समझो।

मेरे सिरपर विपत्तियाँ आयें कि जिससे आपके चरणोंका आश्रय लेनेकी भावना जागे। दुनियाके महापुरुषोंके जीवनमें दु:खके प्रसंग ही पहले आते हैं। चार प्रकारके मदसे मनुष्य भान भूला-सा हो जाता है—(१) विद्यामद, (२) जवानीका मद, (३) द्रव्यमद और (४) अधिकारमद। इन चार प्रकारके मदोंके कारण जीव भगवान्‌को भूल जाता है।

अपने रोते हुए बालकको ताली बजाकर शान्त रखनेका प्रयत्न करता हुआ प्रोफेसर उस समय यह भूल जाता है कि वह एक बड़ा विद्वान् प्रोफेसर है, किंतु उसी प्रोफेसरको प्रभु-कीर्तनके समय ताली बजानेमें लज्जा होती है। पढ़े-लिखे लोगोंको भजन-कीर्तनमें लज्जा आये तो उससे बड़ा पाप कौन-सा होगा!

भगवान्‌ने कहा है कि व्यक्ति इन चार प्रकारके मदसे उन्मत्त बनता है और मेरा अपमान करता है। ऐसे बोलेगा तो मुझे बाहर निकलना पड़ेगा।

महाभारतमें कहा है कि हर प्रकारके रोग मदके कारण ही होते हैं। अत: दीन होकर प्रार्थना करो। तुम्हारे जन्मके कई प्रयोजन बताये जाते हैं, किंतु मुझे लगता है कि दुष्टोंका विनाश करना ही प्रधान कार्य नहीं है। अपने भक्तोंको प्रेमका दान करनेके लिये आप आये हैं।

कुन्ती बनकर स्तुति करो।

मुझसे वासुदेवजीने कहा था कि कंसके त्रासके कारण मैं गोकुल नहीं जा सकता। तुम गोकुलमें जाकर कन्हैयाका दर्शन करना। जब आप गोकुलमें बाल-लीला कर रहे थे, उस समय मैं आपके दर्शनके लिये आयी थी। आपका बालस्वरूप भुलाये नहीं भूलता। उस समय यशोदाने आपको बाँधा था। उसकी झाँकी मैं आजतक नहीं भूली।

काल भी जिससे काँपता है, वे कालके काल श्रीकृष्ण आज थरथर काँप रहे हैं। मर्यादा-भक्ति पुष्टि-भक्तिकी इस प्रकार प्रशंसा करती हैं। कुन्ती यशोदाकी प्रशंसा कर रही हैं। प्रेमका बन्धन भगवान् भी नहीं भूल सकते।

सगुण ब्रह्मका साक्षात्कार करनेके बाद संसारमें आसक्ति रह जाती है। सगुणस्वरूप और निर्गुणस्वरूप दोनोंकी आराधना करे, उसीकी भक्ति सिद्ध होती है। **स्नेहपाशमिमं छिन्धि।** स्वजनोंके साथ जुड़ी हुई स्नेहकी दृढ़ रस्सीको आप तोड़ दें। आप ऐसी दया करें कि मुझे अनन्य भक्ति प्राप्त हो। स्तुतिके आरम्भ और समाप्ति दोनोंमें नमस्ते है।

भगवान् सब कुछ करते हैं, किंतु वैष्णवको नाराज नहीं करते। कुन्तीका भाव जानकर भगवान् वापस लौटे। कुन्तीके महलमें पधारे। अतिशय आनन्द हुआ। अर्जुन वहाँ आये। वह अपनी मातासे कहते हैं कि भगवान् मेरे सखा हैं, अत: मेरे लिये ही वे वापस लौटे हैं। कुन्ती कहती हैं—रास्ता रोककर मैंने विनती की, इसलिये वे वापस आये हैं। द्रौपदी कहती हैं कि कृष्णकी अंगुलि कट गयी थी तो मैंने अपनी साड़ी चीरकर पट्टी बाँधी थी, इसलिये वे वापस आये हैं। सुभद्रा कहती हैं कि मैं तुम्हारी भाँति मुँहबोली नहीं किंतु सगी बहन हूँ। अत: वे वापस आये हैं। मुझसे मिलने आये थे, उस समय मैं कुछ बोल न सकी थी, सो वे वापस आये हैं।

परमात्मासे प्रेम करोगे तो वे तुम्हारे होंगे।

सबका प्यारा, किंतु किसीका भी न होनेवाला। वह सबसे न्यारा है। वह तो ***'सबसों ऊँची प्रेम सगाई'*** का सिद्धान्त मानता है।

आरोग्य-चर्चा—

'लू' से बचनेके उपाय

(डॉ० श्रीअनिलकुमारजी गुप्ता)

फाल्गुन बीतनेके साथ-साथ ग्रीष्म ऋतु आ चुकी है। भीषण ग्लोबल वार्मिंगके कारण प्रत्येक वर्ष गर्मी विकराल रूप लेती जा रही है। बदलते मौसम और गर्मीके कारण अनेक प्रकारके रोगों और शारीरिक समस्याओंका सामना करना पड़ता है। तेज गर्मीसे राहत पानेके लिये व्यक्ति कई तरहके तरीके इस्तेमाल करता है।

होम्योपैथी ऐसी चिकित्सा-प्रणाली है, जो दवाओंसे बीमारीका उपचार करने एवं मानव-शरीरको खुद बीमारीसे लड़कर उसे जड़से समाप्त करनेके लायक बनाती है।

गर्मीके मौसममें प्राय: होनेवाली बीमारियों हैजा, लू, मियादी बुखार, साँसकी तकलीफ, मलेरिया, डेंगू, जोड़ोंका दर्द, स्वाइन फ्लू एवं अन्य फ्लू आदिके इलाजमें भी होम्योपैथी-प्रणालीसे इलाज बेहद आसान एवं जल्द हो जाता है। होम्योपैथीके नुस्खेके साथ रोजाना जिन्दगीमें आहार-विहार, खान-पान, दिनचर्यामें बदलाव लाये जायँ तो बिना किसी बीमारीके स्वस्थ जीवन गुजारा जा सकता है।

गर्मीके मौसममें सेहतकी देखभालके लिये सुबह जल्दी उठकर ताजी हवामें कुछ देर सैर करनेके बाद ताजा पानी पीकर हलकी कसरत तथा योग करना चाहिये। अपने बाहरके ज्यादातर कार्य सुबह एवं शामको ही करने चाहिये। यदि दोपहर तेज धूपमें कहीं जाना ही पड़ जाय, तो आँखोंपर काला चश्मा लगाकर तथा सिरको सूती कपड़े, गमछा, दुपट्टासे ढककर ही बाहर जाना चाहिये। गर्मीमें नींबू-पानी, नमक एवं चीनीयुक्त ठंडा शरबत पीना चाहिये एवं तली हुई वस्तुओंके सेवनसे परहेज करना चाहिये।

रातको सोते समय कूलरकी तरफ मुँह करके नहीं सोना चाहिये। इसी तरह एसीयुक्त कमरेसे एकदम बाहर धूपमें नहीं निकलना चाहिये, एसीसे निकलनेपर पहले छायादार पंखेदार स्थानपर थोड़ी देर रुककर शरीरके तापमानके सामान्य होनेपर ही धूपमें निकलना चाहिये।

गर्मियोंके कारण होनेवाली बीमारियोंमें लक्षणानुसार होम्योपैथीकी मुख्यतया नेट्रम कार्ब, ग्लोनोइन, बेलाडोना, एंटीम क्रूड, एपिस, नेट्रम म्योर, सल्फर, आर्सेनिक अल्बम, बेरेटरम अल्बम, फेरम फॉस, आयोडम इत्यादि दवाएँ इस्तेमालमें आती हैं। गर्मियोंसे बचावके सामान्य तरीकोंके साथ होम्योपैथीकी दवाएँ किसी कुशल होम्योपैथिक चिकित्सकके परामर्शके अनुसार लेनेपर आशातीत सफलता मिलती है।

भीषण 'लू' की परिस्थितियोंमें बाहर निकलनेपर होम्योपैथिक दवा 'ग्लोनाइन २००' की तीन-चार बूँद या गोलीकी मात्रा लेनेपर लू लगनेकी सम्भावनाएँ या उसके दुष्प्रभाव कम-से-कम ही रहेंगे।

गर्मीके मौसममें हमें हलका एवं सुपाच्य भोजन, सन्तुलित मात्रामें ग्रहण करना चाहिये, जिससे हमें शरीरमें हलकापन और ताजगी, स्फूर्ति बनी रहे। गर्मीके मौसममें जितना हो सके, उतना लिक्विड डाइट (Liquid Diet) लेनी चाहिये, अत: गरमीके मौसममें हमें विभिन्न शरबत और मौसमी फलोंका अधिकाधिक सेवन करना चाहिये। शिकंजी, बादाम मिल्क, आमका पना, गुलकन्द, केलेका शरबत, छाछ, मट्ठा, तरबूज, खरबूज, बेल, लीची, सन्तरा, दही, नारियल पानी, लस्सी, गन्नेका रस एवं कुल्फीका सेवन बढ़ा दें।

गर्मीमें होनेवाली समस्याओं जैसे—लू लगना, उलटी-दस्त या पेचिश पड़ना, सरदर्द, माइग्रेन, पित्ती उछलना, टाइफाइड, पीलिया, उच्च रक्तचाप एवं अन्य समस्याओंसे हमें बचनेके लिये ज्यादा-से-ज्यादा पानीका सेवन करना चाहिये, प्रतिदिन ३ से ५ लीटरतक पानी अवश्य लें।

गर्मीसे बचनेके लिये इन बातोंका भी अवश्य ध्यान रखें—

❀ गर्मीके मौसममें हमको खुले शरीरमें नहीं रहना चाहिये।

❀ हमको नंगे सर और नंगे पाँव धूपमें नहीं चलना चाहिये।

❀ हमको कूलर या एसीसे निकलकर तुरन्त धूपमें नहीं जाना चाहिये।

❀ हमको हलके रंगके सूती कपड़े ही पहनने चाहिये।

❀ यदि हम कहीं बाहर तेज धूपसे आये हैं, तो आकर तुरन्त ठंडा पानी नहीं पीना चाहिये।

❀ गर्मीके मौसममें वे मसाले जिनके गुण गरम हों, जैसे—लाल मिर्च, गरम मसाला, लहसुन, काली मिर्च, लौंग, तेजपत्ता बहुत गर्म खाना नहीं खाना चाहिये एवं शराबका सेवन तो कत्तई नहीं करना चाहिये।

तीर्थ-दर्शन—

शुकतालतीर्थ—जहाँ भागवतकथाका शुभारम्भ हुआ

(श्रीइंदलसिंहजी भदौरिया)

सुप्रसिद्ध परम पावन तीर्थधाम शुकताल जनपद मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश, भारतकी ऐसी अनुपम भव्य धार्मिक, ऐतिहासिक पौराणिक तीर्थनगरी है, जहाँपर करीब पाँच हजार साल पहले महाभारत-कालमें हस्तिनापुरके तत्कालीन महाराज पाण्डव-वंशज राजा परीक्षित्को शापसे मुक्ति दिलाकर मोक्ष प्रदान करनेके लिये पतितपावनी पाप-तापविनाशिनी गंगाजीके किनारे प्राचीन अक्षयवटके नीचे बैठकर ८८ हजार ऋषि-मुनियोंके साथ श्रीशुकदेवमुनिजीने श्रीमद्भागवत-कथा सुनायी थी ।

मान्यता है कि पृथ्वीपर श्रीमद्भागवत-कथाका

सूत्रपात यहींसे हुआ था। यह वटवृक्ष आज भी अपनी कालजयी, मनोहारी छटा बिखेर रहा है। इस परम-पावन पौराणिक वटवृक्षके बारेमें मान्यता यह है कि पतझड़के दौरान भी इसका एक भी पत्ता सूखकर जमीनपर नहीं गिरता अर्थात् इसके पत्ते कभी सूखते नहीं हैं। इसके अतिरिक्त इसका एक और विशेष गुण यह भी है कि इस विशाल वृक्षमें कभी जटाएँ उत्पन्न नहीं हुईं। करीब पाँच हजार वर्षकी आयुवाला ये वटवृक्ष आज भी यथावत् चिरयुवा है।

इस वृक्षसे करीब २०० मीटर दूरीपर एक प्राचीन कुआँ भी है, इसे भी पाण्डवकालीन माना जाता है।

शुकताल-तीर्थको अपभ्रंश आदि भाषाई विसंगतियोंके कतिपय कारणोंके कारण शुक्रताल कहा जाने लगा था, लेकिन पूज्य सन्त-महात्माओं एवं प्रबुद्धजनोंके पुरजोर आग्रह एवं जनमानसकी प्रबल जन-आकांक्षाओंका समादर करते हुए उत्तर प्रदेश-सरकारने अपने शासनादेश संख्या ०६/१८९४ एक-१-२०१८-१ (४) दिनांक ३० अगस्त २०१८ के नोटिफिकेशनद्वारा इसका पौराणिक नाम शुकताल-तीर्थ घोषित कर दिया है।

भौगोलिक एवं राजस्व जानकारीके अनुसार राजधानी दिल्लीसे १५०.२ किलोमीटरकी दूरीपर स्थित यह पौराणिक तीर्थ जनपद मुख्यालय मुजफ्फरनगरसे २६ किलोमीटरपर मोरना-भोपा रोडपर अक्षांश २९.४७३०९६ एवं देशान्तर ७८.०१०९७६४ पर धरातलसे १५० फीटकी ऊँचाईपर शुकतालधाम स्थापित है।

जिस तरह गंगाजीका गंगोत्री एवं यमुनाजीका यमुनोत्री तथा नर्मदाजीका अमरकण्टक उद्गम-स्थल है। ठीक उसी प्रकार श्रीमद्भागवत ज्ञानगंगाका उद्गम-स्थल शुकताल है।

शुक्रताल आश्रमके पीठाधीश्वर स्वामी श्रीओमानन्दजी महाराज बताते हैं कि देशके कोने-कोनेसे अनेक श्रद्धालु तीर्थमें आते हैं और एक सप्ताहतक रहकर श्रीमद्भागवत-कथाका आयोजन कराते हैं। इसके अलावा अनेक श्रद्धालु सत्यनारायण भगवान्की कथा एवं गीतापाठका आयोजन भी प्राचीन वटवृक्षके नीचे बैठकर कराते हैं।

इस बारेमें यह मान्यता प्रचलित है कि जो भी श्रद्धालु सच्चे मनसे प्राचीन अक्षयवट वृक्षपर धागा बाँधकर मनौती माँगते हैं। उनकी मनोकामना अवश्य ही पूर्ण होती है।

जिला मुजफ्फरनगर मुख्यालयसे करीब २६ किमी दूर शुकताल तीर्थनगरी गंगातटपर बसे शुचि शुकदेव-आश्रमके सन्त स्वामी श्रीओमानन्दजी महाराजके अनुसार महाभारत-कालमें वीर अर्जुनके पौत्र महाराज परीक्षित् एक दिन वनमें शिकार करने गये थे। वहाँ उन्होंने

कलियुगके प्रभाववश अपने आश्रममें समाधिमें लीन शमीक ऋषिके गलेमें मरा हुआ सर्प डाल दिया था। इससे क्षुब्ध होकर शमीक ऋषिके शिष्यपुत्रने राजा परीक्षित्को शाप दिया कि सात दिनके अन्दर सर्पदंशसे तुम्हारी मृत्यु हो जायगी।

समाधिसे उठनेपर ऋषि शमीक यह जानकर चकित रह गये कि उनके पुत्रने राजाको शाप दिया है। बादमें ऋषि शमीकने राजाको मोक्ष-प्राप्तिके लिये भागवतकथा-श्रवण करनेका उपाय बताया।

तदुपरान्त राजा परीक्षित्ने राजपाट अपने पुत्र जनमेजयको सौंपकर गंगाकिनारे आकर महर्षि व्यासजीके परामर्शसे श्रीशुकदेवमुनिजीसे श्रीमद्भागवत-कथा-श्रवणकी प्रार्थना की। शुकदेवमुनिने यहाँके जंगलमें ऊँचे टीलेपर स्थित इसी वटवृक्षके नीचे राजा परीक्षित्को एक सप्ताहतक श्रीमद्भागवत-कथा सुनायी। यह स्थान बादमें शुकतालके नामसे प्रसिद्ध हो गया। यहाँ सर्वप्रथम श्रीमद्भागवत-कथा-यज्ञका दिव्य आयोजन होनेसे इसे श्रीमद्भागवत-कथामृतकी उद्गम-स्थली भी कहा जाता है।

कालान्तरमें लोकप्रिय परमसन्त स्वामी कल्याण-देवजीके प्रयासोंसे यहाँ शुकदेवमुनिके चरण-चिह्न एवं उनका सुन्दर विग्रह स्थापित कराकर भव्य एवं विशाल शुकदेव-मन्दिरकी स्थापना भी करायी गयी।

इस पावनतम तीर्थस्थलीके लगभग ६-७ किलोमीटरकी परिधिमें कई सनातनी एवं पौराणिक तथा पर्यटनीय स्थल हैं, जहाँ भारी संख्यामें श्रद्धालु भक्तजन तथा दर्शनार्थी आते हैं, इनमें प्रमुख दर्शनीय मन्दिर एवं स्थल इस प्रकार हैं—

पौराणिक अक्षयवट—इसे अनन्त वृक्ष भी कहते हैं। यह एक पहाड़ीपर स्थित है। इसीकी पावन छायामें शुकदेवजीने राजा परीक्षित्को भागवतकी कथा सुनायी थी। इसके बारेमें पूर्ण जानकारी विस्तारसे पहले ही दे चुके हैं।

शुकदेव मन्दिर—अद्भुत शिल्प-कलासे सुसज्जित इस मन्दिरमें बहुत खूबसूरतीसे नक्काशी कलाकृतिको उकेरा गया है, इसके गर्भगृहमें ऋषि शुकदेव और राजा परीक्षत्की भव्य मूर्तियाँ भी स्थापित हैं।

श्रीहनुमान्जीका मन्दिर—शुकदेव मन्दिरके समीपमें ही हनुमान्जीका एक विशाल मन्दिर है। इस मन्दिरके ऊपर श्रीहनुमान्जीकी ७५ फुट ऊँची मनोहर एवं दर्शनीय मूर्ति स्थापित है।

श्रीगणेश मन्दिर—हनुमान्जीके मन्दिरके पास ही अति आकर्षक श्रीगणेशजीका मन्दिर है, जहाँ ३५ फुट ऊँची मंगलमूर्ति श्रीगणेशजीकी पावनतम प्रतिमा स्थापित है।

गायत्री मन्दिर—परम पूजनीय वेदमाता गायत्रीजीका भी सुन्दर मन्दिर इस परिसरमें स्थापित है, इसमें देश-विदेशके श्रद्धालु भक्तगण माँ गायत्री-मन्त्रका जप-अनुष्ठान करते हैं।

शिव एवं दुर्गा धाम—शुकताल तीर्थस्थलसे लगभग एक किलोमीटर उत्तर-पश्चिममें पवित्र गंगा-तटपर भूतभावन भगवान् शंकरजीकी १०१ फीट ऊँची विशालकाय प्रतिमा स्थापित है, उसके निकट ही जगदम्बा माँ दुर्गाजीकी ५१ फीट ऊँची भव्य मूर्ति वातावरणको पावन बना रही है।

भेड़ा हेड़ी पुरातन मंदिर—पौराणिक कथाओं एवं मान्यताओंको समेटे यह वह स्थान है; जहाँके बारेमें बताया जाता है कि यहीं सर्पराज तक्षक (राजा परीक्षित्को डँसनेवाला सर्प) और वैद्यराजकी भेंट हुई थी। उस घटनाक्रमका साक्षी प्राचीन वृक्ष भी इसी परिसरमें है। शुकतालसे ७ किलोमीटरकी दूरीपर यह मन्दिर स्थित है।

इसके अतिरिक्त यहाँ गीताभवन, नक्षत्र-वाटिका, स्वामी कल्याणदेव समाधि-स्थल, संस्कृत पाठशाला भगवान् शंकरजीका भव्य मन्दिर, स्वामी चरनदासजीका मन्दिर, भगवान् श्रीरामजीका मन्दिर, देवी शाकम्भरी मन्दिर, नीलकण्ठ महादेव मन्दिर, एवं श्रीगंगाजीका दिव्य दर्शनीय मन्दिर भी स्थापित हैं।

सन्त-चरित—

गुजरातके भक्तकवि सन्त श्रीकागबापू

(श्रीरतिभाईजी पुरोहित)

ऐजी""""तारू आंगणीयुं पूछीने जे कोई आवे""रे""
आवकारो मीठो आयजे""रे""
वातुं एनी सांभळीने आडुं नव जोजे""
एने तुं माथुं रे हलावीने होंकारो देजे""

अरे मेरे भाई! जो कोई भी तेरे घरका पता पूछकर आये तो उसका मीठा स्वागत करना। यदि उसकी बातें पसन्द न आयें, तो उलटा मत देख जाना, केवल अपना माथा-सिर हिलाकर 'हाँ' कह देना!

ऐसे संस्कृत सुभाषितों-जैसे गीतोंसे ज्ञान, व्यवहार और धर्मका गुजरातमें गाँव-गाँव, घर-घर, जन-जन उपदेश देनेवाले थे गुजरातके भक्तकवि सन्त श्रीदुला भाया काग याने कागबापू।

दुलाजीका जन्म गुजरात (सौराष्ट्र)-के महुवा (मोरारी) शहरके पास छोटे-से गाँव सोदड़ावदरीके चारण जातिके चिनाजी भाया काग और माताजी घनबाईके घर-परिवारमें दिनांक २५ नवम्बर १९०३ ई० को हुआ था।

दुलाजीने योर्ट विक्टरकी स्कूलमें पाँचवीं कक्षातक पढ़ाई की थी। बादमें परिवारके व्यवसायसे जुड़े और तेरह सालकी उम्रमें गोचारणका काम करना आरम्भ किया। उन्होंने गोचारणका काम करते-करते अनेक पद्य रचनाएँ कीं। वे दोहा, चौपाईकी रचनाओंके साथ-साथ गणपतिकी पूजा-अर्चना करते थे। वे अपना अधिकतर समय अनेक पद्य-रचनाएँ बनानेमें बिताते थे। जब चिनाजीने देखा कि लड़का धर्म-ध्यानवाला भक्तकवि है, तो उन्होंने दुलाजीको सन्त महात्मा मुक्तानन्दजीको सौंप दिया।

महात्माजीने उन्हें धर्मग्रन्थ, साहित्य, विचारसागर, पंचदशी और गीता आदि पढ़ाया और कण्ठस्थ करवाया।

दुलाजीको चारणी साहित्य 'पिंगल' पढ़नेकी इच्छा हुई, पढ़ा और सरस्वती माँकी कृपासे केवल सत्रह साल (१७)-की उम्रमें ही सवैया छन्दमें पद्य—कविताकी रचना करने लगे।

दुलाजी स्वान्त:सुखाय, रसिक श्रोता-मण्डल 'डायरा'में अपनी पद्य रचनाएँ ऊँचे—तार स्वरमें गा-सुनाकर ललकारते थे और सब श्रोता लोग रसमग्न हो जाते थे। उनमें काव्य प्रस्तुत करनेकी अद्भुत क्षमता थी। गुजरात सौराष्ट्रमें लोकगीत-भजन-गीतोंके कार्यक्रमको 'डायरा' कहते हैं। उनके स्वरमें गाये गये छन्दोंका चालीस (४०) घंटेका टेप तैयार किया गया है।

उन्हें स्टेट (राज्य)-के महाराज राजकविके लिये बुलाते थे, लेकिन वे कहीं भी गये नहीं; क्योंकि वे मानते थे कि साहित्य, संगीत आदि सभी ललित कलाएँ भगवान्‌की दी हुई प्रसादी हैं, इसलिये अपनी कलासे भगवान्‌को खुश करना चाहिये।

उनकी कविताएँ भक्त और भगवान्, मानव-प्रेम, राष्ट्रभावना, मातृभूमि, धर्म, संस्कृति, सभ्यता और सभी जीवोंके प्रति संवेदना पैदा करनेवाली होती थीं, वैसे ही छन्दोंके साथ सरल रीतिसे गेय भी होती थीं।

उनकी कविताएँ विवेकानन्दजीकी उच्च भावना 'उठो, जागो और ध्येयकी प्राप्तितक रुको नहीं।' जैसी लोगोंको जाग्रत् करनेवाली होती थीं।

गुजरातमें चारण-जाति समाजके लोग 'देवीपुत्तर' याने देवीपुत्र माने जाते हैं।

वे चारण लोग ग्राम्य-जीवनके मूल परिवारके लोगोंकी बोली-भाषामें धर्म, संस्कृति, राष्ट्रभक्ति, अपने निजी जीवनके बारेमें बताने और समझानेवाले गीत सहज, स्वाभाविक ढंगसे बना लेते हैं। ऐसी उनकी बुद्धिशक्ति होती है—ऐसी उनपर माँ सरस्वतीजीकी असीम कृपा होती है।

यहाँके प्रान्तमें बहुधा गाये जानेवाले लोगोंके गीत 'लोकगीत' प्राय: इन चारण कवियोंके बनाये होते हैं।

संत दुला भाया कागबापू भक्तकवि थे। उन्होंने भागवत, महाभारत और रामायणके प्रसंगोंको लेकर

बहुमूल्य गीतरत्नमालाएँ दी हैं।

कागबापूके गीत साहित्यका आश्रय लेकर गुजरातके प्राय: सभी वक्ता-कथाकार अपने-अपने ढंगसे प्रसंग गा-सुनाकर वक्तव्य-कथाको रसप्रद बनाकर सभामें श्रोतावृन्दको रसमग्न कर देते हैं। वे सर्वजनसुखाय, सर्वजनहिताय संत भक्त कवि थे। उनके द्वारा पद्यबद्ध किया गया रामायणजीका केवट-प्रसंग द्रष्टव्य है—

पग मने धोवा द्यो रघुरायजी''''

प्रभु मने शक पड़्या मममाय''''

हे रामजी प्रभु! आप मुझे अपना पग—पाँव प्रक्षालन करने दीजिये; क्योंकि मेरे मनमें एक शंका है कि आपके स्पर्शसे निर्जीव (पत्थरशिला) भी सजीव (अहल्या) बन जाती है और यदि ऐसा हुआ तो मेरे-जैसे निर्धन, गरीबकी आजीविका-धंधाका क्या होगा?

कागबापूके इस भजन-गीतको गा-सुनाकर अनेक रामायणी बड़ी मनोहर रसप्रद कथा करते हैं, जो कथा सब लोगोंको बहुत भाती है।

उनकी सभी काव्य रचनाएँ, 'कागवाणी' में ग्रन्थस्थ हैं। वे अपनी काव्य-रचनाओंके पीछे काग या कागड़ा लिखते थे। गुजराती भाषामें कागड़ाका अर्थ कौआ होता है। वे गुजरातके हृदयस्थ, लोककवि सन्त भक्तकवि थे।

उनकी काव्य रचनाएँ गुजरातके छोटे-बड़े सभी वर्गके लोगोंमें बड़े गौरसे गाँव-गाँव, घर-घर, जन-जनमें पढ़ी, गायी और सुनी जाती हैं।

दुला भाया काग गुजरातमें 'कागबापू'के नामसे जाने जाते हैं। उनके पैतृक गाँव मजादरका नाम बदलकर 'कागधाम' रखा गया है और घर प्रदर्शनीमें रखा गया है।

इस भक्तकविको भारत सरकारकी ओरसे 'पद्मश्री' का खिताब भी सन् १९६२ में दिया गया था।

भक्तकवि संतश्री दुलाभाया काग याने कागबापूका देहावसान दिनांक २२ फरवरी १९७७ ई० को मजादर गाँवमें हुआ।

माँका सपना

अब्राहम लिंकन अमेरिकाके सबसे चर्चित राष्ट्रपतियोंमेंसे एक रहे हैं। उन्होंने अमेरिकाको एक लम्बे गृहयुद्धसे मुक्ति दिलायी तथा दासप्रथा-जैसी अमानवीय प्रथाका अन्त किया। लिंकनका बचपन बड़े अभावोंमें बीता था, उनके पढ़ने-लिखने आदिकी कोई व्यवस्था न थी। परंतु लिंकनकी माँ बड़ी अध्यवसायी थीं, वे अपने पुत्रको एक महान् व्यक्ति बनाना चाहती थीं। वे रात्रिमें भोजन बननेके पश्चात् चूल्हेके बचे हुए कोयलेसे लिंकनको फर्शपर लिखना सिखाती थीं। माँकी मेहनत रंग लायी, उनकी गृह-शिक्षासे लिंकन पढ़ना-लिखना सीख गये। इस प्रकार माँने लिंकनमें अध्ययनप्रियताका संस्कार डाला।

एक बार लिंकनको पता चला कि उनके पड़ोसके एक धनी व्यक्तिके पास जार्ज वाशिंगटनकी जीवनी है। जार्ज वाशिंगटन अमेरिकाके पहले राष्ट्रपति थे। लिंकनने उस व्यक्तिके यहाँ चार दिन मजदूरी करके बदलेमें उस पुस्तकको प्राप्त किया। उन्होंने वाशिंगटनकी जीवनीको कई बार पढ़ा और उनके-जैसा ही बननेका निश्चय किया। अभावोंमें जीवन बिताते हुए भी उन्होंने वकालत पढ़ी। वे रात्रिमें लैम्प-पोस्टकी रोशनीमें पढ़ा करते थे। एडवोकेट बननेके बाद उन्होंने नीग्रो लोगोंकी दयनीय दशा देखी। उन्होंने उनके हितों और अधिकारोंके लिये संघर्ष किया। अन्तमें वे अमेरिकाके राष्ट्रपति बने और उनकी माँका उन्हें महान् व्यक्ति बनानेका सपना पूरा हुआ। [श्रीमती आशा सिंह]

गो-चिन्तन—

आयुर्वेदमें गायके गोबरके उपयोग

(प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़)

भारतीय संस्कृतिमें गायका स्थान देव, नृप तथा अतिथिके समकक्ष रखा गया है। आयुर्वेदमें इनकी अर्चना करनेका निर्देश है।

अर्चयेद्देवगोविप्रवृद्धवैद्यनृपातिथीन् ।

(अ०हृ०सू० १।२४)

आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें गायके गोबरके लिये 'गोमय' शब्दका प्रयोग हुआ है। सुश्रुतने प्रमेहके रोगीके बारेमें कहा है कि गायके गोबर और मूत्रका भक्षण करता हुआ निरन्तर उनकी सेवामें रहे।

तन्मूत्रशकृद्भक्षः। (सुश्रुतसंहिता चि० ११।१२)

तन्मूत्रशकृद्भक्ष इत्यत्र तासां गवामेव मूत्रशकृती ग्राह्ये। (डल्हण)

निर्धन रोगी अगर इसका पालन करता रहे तो एक वर्ष या इससे कम समयमें प्रमेहसे मुक्त हो जाता है।

अधनो वैद्यसन्देशादेवं कुर्वन्नतन्द्रितः।
संवत्सरादन्तराद्वा प्रमेहात् प्रतिमुच्यते॥

(सुश्रुतसंहिता चिकित्सास्थान ११।१३)

साँपद्वारा काटे जानेपर पैत्तिक विषकी अवस्थामें मुखमें गोबरका रस भरकर दंशस्थान और अरिष्टबन्धनके मध्य पच्छ लगाकर विषवैद्यको उसका आचूषण करना चाहिये।

आचूषेत् पूर्णवक्त्रो वा मृद्भस्मागदगोमयैः।
प्रच्छायान्तररिष्टायां मांसलं तु विशेषतः॥

(अष्टांगहृदय उत्तरभाग ३६।४६)

गोबरका रस अन्य द्रव्योंके साथ पीनेसे विषके द्वितीय वेगमें लाभ मिलता है। गोबरके रसको कपित्थके पत्तोंके रसमें मधु तथा घीके साथ मिलाकर पिलानेसे विषके चतुर्थ वेगमें लाभ करता है।

गोमयरसश्चतुर्थे वेगे सकपित्थमधुसर्पिः।

(चरकसंहिता चिकित्सास्थान २३।४८)

गोबरका विषनाशक प्रभाव इस प्रकारका होता है कि गोबरके सड़ जानेसे उत्पन्न बिच्छुओंके विषका प्रभाव मन्द होता है, जबकि साँपके शरीरके कोथसे उत्पन्न होनेवाले बिच्छुओंका प्रभाव महाविष होता है।

गोशकृत्कोथजा मन्दा मध्याः काष्ठेष्टिकोद्भवाः।
सर्पकोथोद्भवास्तीक्ष्णा ये चान्ये विषसम्भवाः॥

(सुश्रुतसंहिता कल्पस्थान ८।५७)

रतौंधी रोगमें गैरिक, तालीसपत्र आदि पीसकर उसे गायके घी, मधु तथा गोबरके रसके साथ सेवन करना चाहिये।

रसक्रिया घृताक्षौद्रगोमयस्वरसद्रुतः।
तार्क्ष्यगैरिकतालीसैर्निशान्धे हितमञ्जनम्॥

(अष्टांगहृदय उत्तरभाग १३।८४)

करंजबीज, उत्पल, सोनागेरु, लालकमलका केसर—इन सबको ताजे गोबरके रसमें पीसकर बनायी बत्ती रतौंधी रोगमें हितकर होती है।

करञ्जिकोत्पलस्वर्णगैरिकाम्भोजकेसरैः ।
पिष्टैर्गोमयतोयेन वर्तिर्दोषान्धनाशिनी॥

(अष्टांगहृदय उत्तरभाग १३।८६)

मूषिक विषमें संशोधनार्थ कपित्थ और गोबरके रसको मधुके साथ लेह बनाकर लेनेका निर्देश है।

मूषक विषमें त्रिकटु बहुल गोबरके रसको प्रयुक्त करना चाहिये।

हितस्त्रिकटुकाढ्यश्च गोमयस्वरसोऽञ्जने।

(सुश्रुतसंहिता कल्पस्थान ७।३८)

लूता और कीट विषकी चिकित्साहेतु वर्णित पद्मक और चम्पक अगदका अनुपान तो गोबरका रस, शर्करा, घृत और मधु है।

तद्वद्गोमयनिष्पीडशर्कराघृतमाक्षिकैः ।

(अष्टांगहृदय उत्तरभाग ३७।७२)

अपस्मार, कामला, ज्वर तथा उन्माद रोगमें हितकर पंचगव्यके निर्माणमें वाग्भटने सर्वप्रथम गोबरके रसका ही उल्लेख किया है।

गोमयस्वरसक्षीरदधिमूत्रैः शृतं हविः।
अपस्मारज्वरोन्मादकामलान्तकरं पिबेत्॥

(अष्टांगहृदय उत्तरभाग ७।१८)

गोबरका लेप भी विभिन्न अवस्थाओंमें हितकर होता है। तगर, आमकी गुठली आदि द्रव्योंको गोबर-रसके साथ पीसकर त्वचापर लगानेसे व्रणके स्थानपर

वर्ण त्वचाके समान हो जाता है।

कालीयकलताम्रास्थिहेमकालारसोत्तमै ।
लेपः सगोमयरसः सवर्णकरणः परम॥

(अष्टांगहृदय उत्तरभाग २५। ६१)

सविष कंघीके प्रयोगसे सिरके बाल झड़ने लगते हैं, सिरमें दर्द होता है, ऐसेमें गोबरके रसका लेप हितकर होता है। वृश्चिकके दंशमें स्वेदन करनेके पश्चात् विषहर द्रव्योंसे चूर्णको घर्षणकर गर्म किये हुए गोबरका लेप करना चाहिये। गोबरके रसमें सोंठ, काली मिर्च और पिप्पलीका चूर्ण मिलाकर उसका प्रयोग अंजनकी भाँति करना चाहिये।

अञ्जनं गोमयरसो व्योषसूक्ष्मरजोन्वितः।

(अष्टांगहृदय उत्तरभाग ३८। २४)

कुछ योगोंके निर्माणमें प्रयुक्त अग्निके लिये केवल उपलोंका प्रयोग ही निर्दिष्ट है। कृमि-चिकित्सामें निर्दिष्ट भल्लातकसे निर्मित तैलका निर्माण करनेके लिये गोबरसे बने उपलोंके प्रयोगका निर्देश है।

द्वितीय आमलक रसायनके निर्माणके लिये उसका आँवलोंके स्वेदनके लिये वन उपलोंकी आगसे करनेका ही निर्देश है।

बाष्पमनुद्वमन्त्यामारण्यगोमयाग्निभिरुपस्वेदयेत्

(चरकसंहिता चिकित्सास्थान १। २। १०)

शोथरोगकी चिकित्सामें वर्णित गण्डीराद्यरिष्टके निर्माणके लिये द्रव्योंके पाकके लिये सूखे गोबरकी अग्निका ही निर्देश है।

गण्डीरभल्लातकचित्रकांश्च व्योषं विडङ्गं बृहतीद्वयं च।
द्विप्रस्थिकं गोमयपावकेन द्रोणे पचेत् कूर्चिकमस्तुनस्तु॥

(चरकसंहिता चिकित्सास्थान १२। २९)

महाकुष्ठरोगकी चिकित्सामें खदिररसका सेवन करना चाहिये। उसका रस निकालनेके लिये खदिर वृक्षके आस-पास गड्ढा खोदकर उसके तनेको लेप करना तथा गोबरके उपलोंका प्रयोग कहा है।

ततस्तं गोमयमृदावलिप्तमवकीर्येन्धनैर्गोमयमिश्रैरा-दीपयेद्यथास्य। (सुश्रुतसंहिता चिकित्सास्थान १०। १३)

वैसे ही नेत्रोंके लिये पुटपाक करनेके लिये निर्दिष्ट द्रव्योंको कमलके पत्तोंसे लपेटकर मिट्टीका लेपकर प्रसादन पुटपाकके लिये गायके उपलोंमें पकानेको कहा है।

उरुबूकवटाम्भोजपत्रैः स्नेहादिषु क्रमात्।
वेष्टयित्वा मृदा लिप्तं धवधन्वनगोमयैः॥

(अष्टांगहृदय सूत्रस्थान २४। १८)

व्रणोपचारकी चिकित्सा बताते हुए सुश्रुतने कहा है कि व्रणपर तैलका अभ्यंगकर उसपर उपलोंकी भस्म लगानी चाहिये।

तैलेन चाभ्यज्य हिताय दद्यात्
सारोद्भवं गोमयजं च भस्म।

(सुश्रुतसंहिता चिकित्सास्थान १८। ५४)

कुष्ठरोगमें त्वचापर लेप करनेसे पूर्व उसकी शुद्धि आवश्यक है और उसको साफ करनेके लिये सूखे गोबरसे वहाँ रगड़नेका निर्देश है।

स्तब्धानि सुप्तसुप्तान्यस्वेदनकण्डुलानि कुष्ठानि।
घृष्टानि शुष्कगोमयफेनकशस्त्रैः प्रदेह्यानि॥

(अष्टांगहृदय चिकित्सास्थान १९। ५८)

परिलेही नामक कानके रोगमें गोबरके चूर्णकी बार-बार सेंक करना चाहिये।

स्विन्नां गोमयजैः पिण्डैर्बहुशः परिलेहिकाम्॥

(अष्टांगहृदय उत्तरभाग १८। ४८)

चरकसंहितामें मृत्युसे पूर्व लक्षणोंका वर्णन करनेसे होनेवाले इन्द्रिय स्थानके अन्तिम अध्यायका नाम गोमय चूर्ण इन्द्रिय अध्याय है। जिस व्यक्तिके सिरसे गोबर चूर्णके सदृश स्नेहके साथ चूर्ण गिरता है, उसका जीवन एक माससे अधिक नहीं होता।

यस्य गोमयचूर्णाभं चूर्णं मूर्ध्नि मुखेऽपि वा।
सस्नेहं मूर्ध्नि धूमो वा मासान्तं तस्य जीवितम्॥

(अष्टांगहृदय शा० ५। १७)

अग्निकणको तृण तथा गोमय आदिके संयोगसे सुलगानेसे वह अग्नि महान्, स्थिर तथा सब पदार्थोंको पकानेवाला हो जाता है, ठीक वैसे ही पेया, विलेपी आदिके सेवनसे जठराग्नि सशक्त हो जाती है। गोमय गायद्वारा प्रदत्त वस्तुओंमेंसे अमूल्य उपहार है, इसके गुणोंका ज्ञानकर इसका उपयोग अपने दैनिक जीवनमें करना चाहिये।

सुभाषित-त्रिवेणी

मधुर वाणीसे लाभ

[The advantage of Polite Speech]

वाक्संयमो हि नृपते सुदुष्करतमो मतः।
अर्थवच्च विचित्रं च न शक्यं बहु भाषितुम्॥

राजन्! वाणीका पूर्ण संयम तो बहुत कठिन माना ही गया है, परंतु विशेष अर्थयुक्त और चमत्कारपूर्ण वाणी भी अधिक नहीं बोली जा सकती।

"Rajan, it is quite a job to control one's utterances. However, even the meaningful, literary and learned language cannot be overused.

अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक् सुभाषिता।
सैव दुर्भाषिता राजन्ननर्थायोपपद्यते॥

राजन्! मधुर शब्दोंमें कही हुई बात अनेक प्रकारसे कल्याण करती है; किंतु वही यदि कटु शब्दोंमें कही जाय तो महान् अनर्थका कारण बन जाती है।

"A well-spoken word can be a source of immense joy and well-being. The same intent if conveyed in bitter words can cause a lot of damage.

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम्।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम्॥

बाणोंसे बींधा हुआ तथा फरसेसे काटा हुआ वन भी पनप जाता है, किंतु कटु वचन कहकर वाणीसे किया हुआ भयानक घाव नहीं भरता।

"A forest damaged by the hunters' arrows and sliced by axes will revive in time. However, a wound caused by bitter taunts does not heal..

कर्णिनालीकनाराचान्निर्हरन्ति शरीरतः।
वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः॥

कर्णि, नालीक और नाराच नामक बाणोंको शरीरसे निकाल सकते हैं, परंतु कटु वचनरूपी काँटा नहीं निकाला जा सकता; क्योंकि वह हृदयके भीतर धँस जाता है।

"The arrows named Karni, Nalika and Naraca can be plucked out of the body. However, the thorn of a bitter spite cannot be pulled out because it pierces deep into the heart.

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति
यैराहतः शोचति रात्र्यहानि।
परस्य नाममर्मसु ते पतन्ति
तान् पण्डितो नावसृजेत् परेभ्यः॥

वचनरूपी बाण मुखसे निकलकर दूसरोंके मर्मपर ही चोट करते हैं, उनसे आहत मनुष्य रात-दिन घुलता रहता है। अतः विद्वान् पुरुष दूसरोंपर उनका प्रयोग न करे।

"Unpleasant words coming out of a mouth like arrows hurt the core of the listener. The aggrieved person suffers day and night. Hence the learned should avoid using any bitter and foul language.

अतिवादं न प्रवदेन्न वादयेद्
योऽनाहतः प्रतिहन्यान्न घातयेत्।
हन्तुं च यो नेच्छति पापकं वै
तस्मै देवाः स्पृहयन्त्यागताय॥

जो स्वयं किसीके प्रति बुरी बात नहीं कहता, दूसरोंसे भी नहीं कहलाता, बिना मार खाये स्वयं न तो किसीको मारता है और न दूसरोंसे ही मरवाता है, मार खाकर भी अपराधीको जो मारना नहीं चाहता, देवता भी उसके आगमनकी बाट जोहते रहते हैं।

"Even the gods await the arrival of a person who does not speak ill of others or who does not compel others to back-bite. Such a person unless provoked, does not attack others nor does he provoke others to hurt anyone. He is so noble that even if hurt by someone, he forgives the guilty.

[विदुर-नीति २।७६—८०, ४।११]

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०८०, शक १९४५, सन् २०२३, सूर्य-उत्तरायण-दक्षिणायन, ग्रीष्म-वर्षा-ऋतु, शुद्ध श्रावण-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें २।५८ बजेतक	मंगल	पू०षा० दिनमें १०।३ बजेतक	४ जुलाई	**मकरराशि** दिनमें ३।४० बजेसे।
द्वितीया ,, १२।३६ बजेतक	बुध	उ०षा० ,, ८।३२ बजेतक	५ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ११।२२ बजेसे।
तृतीया ,, १०।८ बजेतक	गुरु	श्रवण प्रात: ६।५४ बजेतक	६ ,,	**भद्रा** दिनमें १०।८ बजेतक, **कुम्भराशि** सायं ६।३ बजेसे, **पंचकारम्भ** सायं ६।३ बजे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९।४३ बजे, **पुनर्वसुका सूर्य** रात्रिमें ३।२२ बजे।
चतुर्थी प्रात: ७।४० बजेतक	शुक्र	शतभिषा रात्रिमें ३।३६ बजेतक	७ ,,	× × × × ×
षष्ठी रात्रिमें २।५५ बजेतक	शनि	पू०भा० ,, २।६ बजेतक	८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २।५५ बजेसे, **मीनराशि** रात्रिमें ८।२९ बजेसे।
सप्तमी ,, १२।४९ बजेतक	रवि	उ०भा० ,, १२।४९ बजेतक	९ ,,	**भद्रा** दिनमें १।५२ बजेतक, **मूल** रात्रिमें १२।४९ बजेसे।
अष्टमी ,, ११।१ बजेतक	सोम	रेवती ,, ११।४८ बजेतक	१० ,,	**मेषराशि** रात्रिमें ११।४८ बजेसे, **श्रावण सोमवारव्रत, पंचक समाप्त** रात्रिमें ११।४८ बजे।
नवमी ,, ९।३४ बजेतक	मंगल	अश्विनी ,, ११।९ बजेतक	११ ,,	**मूल** रात्रिमें ११।९ बजेतक।
दशमी ,, ८।३१ बजेतक	बुध	भरणी ,, १०।५४ बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** दिनमें ९।२ बजेसे रात्रिमें ८।३१ बजेतक, **वृषराशि** रात्रिशेष ४।५७ बजेसे।
एकादशी ,, ७।५६ बजेतक	गुरु	कृत्तिका ,, ११।७ बजेतक	१३ ,,	**कामदा एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी ,, ७।५३ बजेतक	शुक्र	रोहिणी ,, ११।५० बजेतक	१४ ,,	× × × × ×
त्रयोदशी ,, ८।२० बजेतक	शनि	मृगशिरा ,, १।४ बजेतक	१५ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ८।२० बजेसे, **मिथुनराशि** दिनमें १२।२७ बजेसे, **शनिप्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, ९।१५ बजेतक	रवि	आर्द्रा ,, २।४५ बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** दिनमें ८।४७ बजेतक।
अमावस्या ,, १०।३९ बजेतक	सोम	पुनर्वसु रात्रिशेष ४।५२ बजेतक	१७ ,,	**श्रावण सोमवार व्रत, सोमवती अमावस्या, कर्कराशि** रात्रिमें १०।२० बजेसे, **कर्क संक्रान्ति** दिनमें ४।३२ बजे, **सूर्य दक्षिणायन प्रारम्भ।**

सं० २०८०, शक १९४५, सन् २०२३, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, अधिक श्रावण-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १२।२२ बजेतक	मंगल	पुष्य अहोरात्र	१८ जुलाई	× × × × ×
द्वितीया ,, २।२० बजेतक	बुध	पुष्य प्रात: ७।१६ बजेतक	१९ ,,	**मूल** प्रात: ७।१६ बजेसे।
तृतीया रात्रिशेष ४।२३ बजेतक	गुरु	आश्लेषा दिनमें ९।५३ बजेतक	२० ,,	**सिंहराशि** दिनमें ९।५३ बजेसे, **पुष्यका सूर्य** रात्रिशेष ४।४९ बजे।
चतुर्थी अहोरात्र	शुक्र	मघा दिनमें १२।२९ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** सायं ५।२० बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेश चतुर्थीव्रत, मूल** दिनमें १२।२९ बजेतक।
चतुर्थी प्रात: ६।१८ बजेतक	शनि	पू०फा० ,, २।५७ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** प्रात: ६।१७ बजेतक, **कन्याराशि** रात्रिमें ९।३० बजेसे।
पंचमी दिनमें ७।५७ बजेतक	रवि	उ०फा० सायं ५।७ बजेतक	२३ ,,	**सायन सिंहराशिका सूर्य** रात्रिमें ७।० बजे।
षष्ठी ,, ९।१३ बजेतक	सोम	हस्त ,, ६।५२ बजेतक	२४ ,,	**श्रावण सोमवारव्रत।**
सप्तमी ,, १०।३ बजेतक	मंगल	चित्रा रात्रिमें ८।११ बजेतक	२५ ,,	**भद्रा** दिनमें १०।३ बजेसे रात्रिमें १०।१३ बजेतक, **तुलाराशि** प्रात: ७।३२ बजेसे।
अष्टमी ,, १०।२१ बजेतक	बुध	स्वाती ,, ८।५८ बजेतक	२६ ,,	**बुधाष्टमी पर्व।**
नवमी ,, १०।१० बजेतक	गुरु	विशाखा ,, ९।१६ बजेतक	२७ ,,	**वृश्चिकराशि** दिनमें ३।१२ बजेसे।
दशमी ,, ९।२८ बजेतक	शुक्र	अनुराधा ,, ९।४ बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ८।५३ बजेसे, **मूल** रात्रिमें ८।४ बजेसे।
एकादशी ,, ८।१९ बजेतक	शनि	ज्येष्ठा ,, ८।२८ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** दिनमें ८।१९ बजेतक, **धनुराशि** रात्रिमें ८।२८ बजेसे, **पुरुषोत्तमी एकादशीव्रत, (सबका)।**
द्वादशी प्रात: ६।४६ बजेतक	रवि	मूल ,, ७।३२ बजेतक	३० ,,	**प्रदोषव्रत, मूल** रात्रिमें ७।३२ बजेतक।
चतुर्दशी रात्रिमें २।४४ बजेतक	सोम	पू०षा० सायं ६।१७ बजेतक	३१ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २।४४ बजेसे, **मकरराशि** रात्रिमें ११।५४ बजेसे, **श्रावण सोमवारव्रत।**
पूर्णिमा ,, १२।२४ बजेतक	मंगल	उ०षा ,, ४।४८ बजेतक	१ अगस्त	**भद्रा** दिनमें १।३४ बजेतक, **पूर्णिमा।**

कृपानुभूति

भगवतीकी कृपाका प्रत्यक्ष प्रमाण

अदृश्य शक्ति है अथवा नहीं, यह हरदम विवादका विषय रहा है। कभी मैं भी इससे ग्रस्त रहा करता था। पता नहीं, कैसे धीरे-धीरे मेरी श्रद्धा-भक्ति दैवीशक्तिकी ओर हो गयी। मैं सन् १९८६ ई० से शरद्-ऋतुका नवरात्रि-पूजन स्वयं यथाशक्ति विधिपूर्वक नियमित प्रतिवर्ष करने लगा तथा माँ जगज्जननीका सान्निध्य प्राप्त करनेकी साधनामें रत हो गया। धीरे-धीरे मुझे अनुभव हुआ कि उनकी कृपा यदा-कदा मुझे प्राप्त होती है। एक-दो घटनाएँ ऐसी हुईं कि मेरा विश्वास दृढ़ हो गया।

एक बारकी बात है, मेरी आँखोंके सम्मुख उठते-बैठते, चलते-फिरते माँकी छाया बार-बार प्रकट हो रही थी। लगा माँ पूजनकी ओर इंगित कर रही हैं। मैं अस्वस्थ अनुभव कर रहा था। नवरात्रका समय समीप था, फिर भी मैंने पूजा करनेकी ठानी। पत्नी अस्वस्थ होनेके कारण सहयोग करनेसे हिचक रही थी, किसी कारणवश पुत्रने भी गंगाजल और गंगामिट्टी लानेमें अपनी असमर्थता बतायी। पूजा आरम्भ होनेमें एक दिन शेष था। मैं दोपहरमें लाचार हो बैठा, कुछ सोच रहा था। तभी माँकी छाया आँखोंके सम्मुख आ गयी। मैंने हँसकर कहा, 'अब क्या करूँ? कुछ ऐसा चमत्कार तो होनेसे रहा कि गंगामिट्टी और जल लाने कोई यहाँपर आ जायगा।' पाँच मिनट भी नहीं हो पाया था कि मेरे एक नये किरायेदारका चपरासी मुझसे बालू लेनेकी अनुमति माँगने आया, मैंने अनुमति देते हुए उससे अनुरोध किया कि मुझे थोड़ा गंगाजल और मिट्टी ला दो। उसने स्वीकार कर लिया और कल ९ बजेतक ला देनेका वादा किया, मैंने झटपट पूजन-सामग्री लाकर पूजाकी तैयारी की और बहुत बढ़ियासे पूजा सम्पन्न की। मन सन्तुष्ट हो गया। वह चमत्कार मैं कभी भूल नहीं सकता।

सन् २००६ ई० की एक दूसरी बड़ी विचित्र घटना है। उस दिन रात ९ बजेके लगभग मेरी नतिनीने फोन किया कि माँके पेटमें बहुत दर्द है, मैंने पता नहीं क्यों, सुनते ही यह कह दिया कि 'पापाको कहो एम्बुलेंस बुलाकर इमर्जेन्सीमें ले जायँ।' थोड़ी देर बाद फिर फोन आया कि माँ बहुत रो रही है, कुछ दवा बता दीजिये। मैंने होम्योपैथीकी कुछ दवाएँ बता दीं। साथ ही मन-ही-मन जगदम्बासे प्रार्थना की कि उसकी रक्षा करें।

स्थितिकी गम्भीरतासे उस समयतक हम लोग अनभिज्ञ थे, रातभरमें स्थिति ऐसी हो गयी कि सुबह होते ही एम्बुलेंस बुलाना पड़ा। बहुत मुश्किलसे उसपर चढ़ाया गया और लेडी डॉक्टर जिनसे पहलेसे इलाज चल रहा था, उनके पास ले जाया गया। लेडी डॉक्टरने तुरंत उसे पटना मेडिकल कॉलेज हॉस्पिटल ले जानेकी सलाह दी और उसने वहाँके इंचार्ज लेडी डॉक्टरको फोन कर दिया कि तुरंत ऑपरेशन करना पड़ेगा, तैयारी करके रखें। वे लोग अस्पतालकी ओर बढ़ गये और मुझे सूचना दी कि किसीको भेजें। मेरी पत्नी और मेरे बड़े बेटे तुरंत वहाँ पहुँच गये। मुझे सूचित किया कि बेटीको ऑपरेशन थियेटरमें ले जाया गया है और खूनकी व्यवस्था करनेको कहा गया है। मैं लगभग १० बजेतक वहाँ पहुँचा। ऑपरेशन हो चुका था। खून चढ़ानेकी व्यवस्था की जा रही थी। मेरे बड़े बेटेने खून दिया था। स्थितिकी गम्भीरताका पता मुझे तब चला, जब मुझे यह बताया गया कि टेस्ट करनेके लिये एक बूँद खून भी उसके शरीरसे नहीं निकाला जा सका। मैं यह सुनकर थोड़ा घबराया और बेटीसे मिलनेकी इच्छा जाहिर की। मुझे दामादजी आई०सी०यू० में ले गये। मैंने देखा वह आँखें बन्दकर लेटी हुई थी। साँसें चल रही थीं, आँखें खोलीं, कुछ बोली और फिर चुपचाप आँखें बन्द कर लीं। मैंने उसके बिस्तरके पास कवचकी कुछ पंक्तियाँ पढ़ीं और माँसे विह्वल भावसे सुरक्षाकी प्रार्थना पुनः की। खून चढ़ाया गया, मैं चुपचाप वहाँसे निकलकर पासके देवी-मन्दिरमें दर्शन करने चला गया, फिर घर वापस चला आया।

दूसरे दिन दोनों लेडी डॉक्टरने बेटीसे कहा कि तुम्हारी जान कैसे बच गयी, यह आश्चर्य हो रहा है; क्योंकि तुम्हारी नाड़ी बिलकुल बन्द हो गयी थी और तुम्हारे शरीरसे सारा खून बह चुका था। यह सब सुनकर माँ भगवतीकी कृपाकी मुझे अनुभूति हुई और मेरा हृदय उनका असीम स्नेह पाकर गद्गद हो गया। तभी मेरे मुखसे अनायास निम्न पंक्तियाँ निकलीं—

कम पड़ती है श्रद्धा मेरी, तेरी तत्परता के आगे।
अद्भुत शक्ति विपुल बल जागे, नत-मस्तक माँ तेरे आगे॥

[श्रीदुर्गेशनन्दनजी रुखैयार]

पढ़ो, समझो और करो

(१)

'राम-राम' कहनेका सुफल

एक आदमी बर्फ बनानेवाली कम्पनीमें कार्य करता था। एक दिन फैक्टरी बन्द होनेसे पहले अकेला फ्रिजवाले कमरेमें गया, तो गलतीसे दरवाजा बन्द हो गया और वह अन्दर बर्फवाले हिस्सेमें फँस गया। छुट्टीका वक्त था और सब काम करनेवाले कर्मचारी घर जा रहे थे। किसीने ध्यान नहीं दिया कि कोई अन्दर रह गया है। वह समझ गया कि दो-तीन घंटेमें उसका शरीर बर्फ बन जायगा। मौतको सामने देख वह भगवान्‌को सच्चे मनसे याद करने लगा। कहने लगा—'हे भगवन्! आपने अहल्याको पत्थरसे नारी बनाया, द्रौपदीकी लाजकी रक्षा की, प्रह्लादको अग्निसे बचाया। हे प्रभो! मेरे बीबी-बच्चे मेरा इन्तजार कर रहे होंगे। उनका पेट पालनेवाला इस दुनियामें सिर्फ मैं ही हूँ। मैं पूरे जीवन आपके इस उपकारको याद रखूँगा। प्रभो! अगर मैंने जिन्दगीमें कोई एक काम भी धर्मका किया हो तो तुम मुझे यहाँसे बाहर निकालो।' इतना कहते-कहते उसकी आँखोंसे आँसू निकलने लगे।

एक घंटा ही गुजरा था कि अचानक फ्रीजर रूममें आवाज हुई। दरवाजा खुला और चौकीदार भागता हुआ अन्दर आया। उसने उस आदमीको उठाकर बाहर निकाला और गर्म हीटरके पास ले गया।

कुछ समय पश्चात् उसकी हालत ठीक हुई तो उसने चौकीदारसे पूछा—'आप अन्दर कैसे आये?'

चौकीदार बोला—'साहब, मैं बीस सालसे यहाँ काम कर रहा हूँ। इस कारखानेमें काम करते हुए प्रतिदिन सैकड़ों मजदूर और ऑफिसर कारखानेमें आते हैं। मैं सबको देखता हूँ, लेकिन आप उन कुछ लोगोंमेंसे हो, जो जब भी कारखानेमें आते हैं तो मुझसे 'राम-राम' जरूर करते हैं और निकलते हुए आपका 'राम-राम' कहना मेरे सारे दिनकी थकान दूर कर देता है। ज्यादातर लोग मेरे सामनेसे ऐसे गुजर जाते हैं, जैसे मैं हूँ ही नहीं।'

आज हर दिनकी तरह मैंने आपका आते हुए अभिवादन तो सुना, लेकिन जाते समय 'राम-राम' सुननेका इन्तजार करता रहा। जब ज्यादा देर हो गयी तो मैंने आपकी तलाश करनी शुरू की। वह आदमी हैरान हो गया कि किसीको 'राम-राम' अभिवादन करनेमात्रसे उसकी जान बच गयी। सच कहा जाता है कि 'राम-राम' कहनेसे तर जाओगे।

[श्रीउमेशप्रसाद सिंह]

(२)

सत्संगका प्रभाव

अबसे लगभग ५०० वर्ष पूर्व आमेर (राजपूताना)-की घटना है। कांचीके स्वामीजीको निमन्त्रण देनेके लिये पतितपावन श्रीबालकृष्णदास पयहारी बाबाजी महाराजने युवा साधु भेजे थे। उनके लौटते समय कांचीके स्वामीजीने उन्हें पाँच सौ स्वर्णमुद्राएँ दी थीं। गलताजी स्थानपर जाते समय बाजारमें दोनों साधुओंकी दृष्टि एक रूपलावण्ययुक्त मनोहारी सुन्दरी रूपजीवा वेश्यापर पड़ी। काम-वासनासे प्रेरित होकर दोनोंने सम्पूर्ण स्वर्णमुद्राओंको उस सुन्दरीको सौंपकर रात्रिमें सुख भोगनेका सौदा कर लिया।

रात्रि हुई। वे दोनों साधु उस वेश्याके घर जानेको निकल पड़े। बहुत कालतक ढूँढ़नेपर भी उन्हें उस वेश्याका घर नहीं मिला। दूसरी ओर, वेश्याने भी बहुत देरतक उन लोगोंकी प्रतीक्षा की। पश्चात् स्वयं उन साधुओंकी खोज करने निकली। दोनों पक्ष रात्रिभर एक-दूसरेको खोजते रहे। प्रातःकाल हो गया। तब इन तीनोंका मिलन वहीं बाजारमें हो गया, जहाँ सर्वप्रथम मिले थे।

पूर्व संस्कारके पुण्योदयसे और भगवान्‌की कृपासे अथवा कालकी अचिन्त्य गतिसे वेश्याको देखते ही उन्हें अपने-आपपर धिक्कार हो आया कि 'अरे! हम इस वेश्याको रात्रिभर व्याकुल चित्तसे ढूँढ़ते फिरे।' अतिशय ग्लानि एवं पश्चात्तापसे दोनोंके हृदय भर आये। इनके पुनीत पश्चात्तापके तेजको तथा परिवर्तनको देखकर उस वेश्याको

भी अपने नारकीय जीवनपर घृणा आ गयी और वह रोने लगी। यौवनका ज्वर, कामका ज्वर और स्वर्णराशिका ज्वर एक साथ उठा और एक साथ शान्त हुआ।

साधुओंके मुखसे उनके समर्थ गुरु श्रीबालकृष्णदास पयहारी बाबाजी महाराजके बारेमें सुनकर वेश्याको भी उनके दर्शनकी लालसा हुई। वेश्याको साथमें लेकर, दोनों गुरुभाइयोंने सारा कपट छोड़कर अपनी बात ज्यों-की-त्यों गुरुदेवको बता दी तथा दण्ड और क्षमाकी प्रार्थना की।

पतितपावन गुरुदेवजी महाराजने उनकी सरलता तथा सच्ची ग्लानि ही देखी और क्षमा प्रदान किया। वेश्याको अपनी शरणमें ले लिया एवं राममन्त्र प्रदान किया। वेश्याका तो नूतन जन्म हो गया। उस वेश्याने अपनी अपार सम्पत्ति सन्तसेवामें लगायी। भक्ति और उपासनामें लीन रहने लगी। गुरु भगवान्के आगे वह भजन-संकीर्तन करती थी।

गुरु भगवान्ने उस देवीको रामदासी नाम दिया। आगे चलकर गुरुकृपा एवं भजनके पुण्यसे वह देवी सिद्धयोगिनी हुई। उसने अपनी सम्पूर्ण पार्थिव सम्पत्तिका दैवीकरण किया। सत्संगके प्रभावसे वह भक्तोंके हृदयमें स्थान पायी। **[पं० श्रीश्यामजीतजी दूबे 'आथर्वण']**

(३)

हनुमदुपासनासे ऋणात्मक ऊर्जासे मुक्ति

यह घटना सन् १९४५ ई०की है। उन दिनों मेरे पिताजीकी नियुक्ति जहाजपुर (जिला-भीलवाड़ा)-में थी। मैं पाँच-छः वर्षका बालक ही था। पिताजी सपरिवार एक मकानमें किरायेपर रहते थे, परिवारमें माता-पिताके अतिरिक्त मेरी बड़ी बहन और दो वर्षीया छोटी बहन साथ रहते थे। उस मकानके विषयमें लोगोंकी धारणा थी कि वह मकान 'भुतहा' है, उसमें एक व्यक्तिने आत्महत्या की थी। उसकी ही प्रेतात्मा वहाँ चक्कर लगाती है। कुछ समयतक तो हमारे साथ कोई घटना नहीं घटी। आधुनिक भाषामें प्रेतपीड़ित वातावरणको ऋणात्मक ऊर्जा (Negative Energy)-की संज्ञा दी जाती है।

एक दिन अर्धरात्रिको अकस्मात् मकानकी एक कोठरीसे चीखनेकी आवाज आयी। हम सभी हड़बड़ाकर उठ बैठे। साहस करके कोठरीमें गये तो कुछ नहीं था। दूसरे दिन रात्रिको भी इसी घटनाकी पुनरावृत्ति हुई। अब हमारी समझमें आया कि यह प्रेतप्रकोप है। कभी-कभी किसी कमरेमें अचानक कूड़े-करकट या छोटे-छोटे पत्थरोंकी स्वतः—अपने-आप वर्षा होने लगती। घरके बच्चे इन घटनाओंको देखकर भयभीत हो रहे थे। अन्तमें पिताजीने प्रेतबाधानिवारणके लिये एक पण्डितसे 'सुन्दरकाण्ड' का पाठ कराया और स्वयं भी नित्य 'हनुमान्जी'के चित्रके पास बैठकर 'हनुमान-चालीसा' का पाठ करने लगे। गृहशान्तिका कार्यक्रम भी किया। आश्चर्य! भगवत्कृपासे प्रेतका प्रकोप बन्द हो गया। कहनेका अभिप्राय यह है कि अन्तःकरणसे श्रद्धा और निष्ठापूर्वक याचनाके शब्द निकलें तो भगवत्कृपासे सभी कष्ट दूर हो जाते हैं। **[डॉ० श्रीश्याम मनोहरजी व्यास]**

(४)

मेरी प्रार्थना—मेरी शक्ति

मेरा जन्म एक ऐसे परिवारमें हुआ, जहाँ पूजा-पाठका नियम था। दादी, माता और पिता—तीनों नित्य प्रभुकी सेवा, पूजा और ध्यान किया करते थे। इसलिये बचपनसे ही भक्ति-भावके संस्कार तो मुझमें थे, परंतु, नित्य पूजा-पाठका मेरा कोई नियम नहीं था। प्रभुने मुझे सब कुछ दिया, परंतु दुर्भाग्यवश एक ऐसी बीमारीने साथ पकड़ लिया, जिसका दुनियाके किसी कोनेमें इलाज नहीं था। इस कारण मैंने बहुत धक्के खाये। भारतके हर कोनेमें गयी, परंतु बीमारीके चलते न केवल शारीरिकरूपसे निर्बलता आयी, अपितु मानसिकरूपसे भी बहुत धक्का लगा। शायद जिन्दगीकी उथल-पुथलने मुझे बीमारियोंका घर बना लिया। वक्त लगा, परंतु यह समझमें आया कि योग, ध्यान, पूजा और भगवान्की भक्तिमें ही जीवनकी सच्चाई है। साथ ही यह भी विश्वास होता गया कि प्रभुसे सच्चा, सरल और हितैषी कोई भी नहीं है। वक्तके साथ यह भी अनुभव हुआ कि जीवनमें आनेवाली कठिनाइयाँ हमें गलत मार्गपर बढ़नेसे रोकने और सँभलनेके लिये एक संकेत होती हैं। या शायद हमें बड़ी

मुश्किलोंसे बचानेके लिये और सही रास्ता दिखानेके लिये तथा दूसरोंके दर्दको समझनेके लिये। अब मुझे यह एहसास होता है कि मेरे पास बहुत कुछ है; क्योंकि मेरे पास प्रार्थना है। प्रार्थना हमें शक्ति प्रदान करती है और दु:खमें भी सुखको पहचाननेकी क्षमता बनती जाती है। जीवनकी उथल-पुथल दूर करनेका एक ही रास्ता है 'प्रार्थना और पूजा'। इस बीमारीने प्रार्थना और पूजाका रास्ता दिखाया और प्रार्थनाने शान्ति और हिम्मतका, इसलिये प्रभु! धन्यवाद आपका, मुझे अपने पास रहनेका रास्ता दिखानेके लिये। अंग्रेजीमें एक कहावत है "blessing in disguise"। जिसका तात्पर्य है कि कोई वस्तु प्रारम्भमें समस्यात्मक और दुर्भाग्यशाली लगती है, परंतु बादमें उसके परिणाम बहुत ही अच्छे होते हैं। भगवान्‌की भक्ति, उनकी पूजा, ध्यान आदि ऐसी ही वस्तुएँ हैं। मुझे लगता है कि मंजिल अभी दूर है, परंतु प्रभुका धन्यवाद कि रास्ता तो मिला। पूजा-अर्चना, व्रत आदि आडम्बर नहीं हैं, आत्मशक्ति और मानसिक बलके लिये ये रामबाण औषधि हैं। आजकल लोग मेडिटेशनपर बहुत-सा रुपया लगा रहे हैं, परंतु आस्था नहीं है तो मेडिटेशनका भी कोई फायदा नहीं होता। आस्था और ध्यानसे शक्ति आती है और आस्थाकी शक्ति मन और शरीरको सशक्त करती है। आजकल तो चिकित्सक और डॉक्टर भी प्रार्थना और प्रभुपर विश्वासको इलाजका अभिन्न अंग समझते हैं। इसलिये प्रत्येक व्यक्तिको आध्यात्मिक रूपसे सबल होना आवश्यक है, क्योंकि प्रार्थना ही हर प्रकारकी सफलताका स्रोत है।

[डॉ० रिंकू मनोचा]

(५)

सच्चे विश्वासका प्रभाव

गाँवके बाहर एक छोटी-सी किरानेकी दूकान थी। दूकानदारका स्वभाव इतना अच्छा था कि गाँवके सभी लोग उसकी दूकानसे माल खरीदना चाहते थे। दूकानदार प्रभुभक्त था। रात्रिमें चौकमें बैठकर वह सुमधुर कण्ठसे भजन गाता था। गाँवके लोग वहाँ आकर भजन सुनते थे तथा स्वयं भी प्रेमसे गाते थे।

जैसा लोगोंका विश्वास व्यापारीके ऊपर था, वैसा ही दृढ़ विश्वास व्यापारीका भी लोगोंके ऊपर था। दोपहरको भोजन करनेके लिये अपने घर जानेके समय दूकानपर बैठे हुए किसी भी व्यक्तिको वह दूकानदार अपनी दूकान सौंपकर भोजन करने चला जाता था। यह उसका नित्यका क्रम बन गया था। एक दिन दोपहरके समय उसकी दूकानपर एक प्रसिद्ध डाकू आया और वहीं बैठ गया। कोई भी उसे पहचानता नहीं था कि वह डाकू है। भोजनका समय होते ही दूकानदारने उस डाकूको अपनी दूकान सौंप दी और स्वयं घर चला गया। उसके जानेके बाद वह डाकू दूकानपर बैठ गया और दूकानका लेन-देनका काम करने लगा।

उस समय डाकूकी टोलीका एक आदमी कुछ खरीद करनेके लिये आया और दूकानपर अपने साथीको ही बैठा हुआ देखकर उसने कहा—'दोस्त! बहुत अच्छा मौका मिला है, आज दोपहरके समयमें हाथ मारनेमें कोई मुश्किल नहीं। एक ही बारमें बेड़ा पार हो जायगा।'

'तुम जल्दीसे चले जाओ यहाँसे!'—दूकानपर बैठे हुए डाकूने लाल आँखें करके कहा। 'ऐसा विश्वासघात करनेसे तो हमारा सर्वनाश हो जायगा। यदि इस समय दूकानके प्रति तुम कुदृष्टि डालोगे तो तुम्हारी खैर नहीं।' अपने साथीसे इस प्रकारका उत्तर पाकर वह व्यक्ति चुप हो गया और अपनी आवश्यकताकी वस्तु खरीदकर चुपचाप लौट गया। थोड़ी देरमें भोजन करके दूकानदार लौट आया। दूकान सँभाले हुए डाकूने खड़े होकर कहा—'महाशय! सँभालिये अपनी यह दूकान और गिन लीजिये पैसे; कोई हेर-फेर तो नहीं हुआ?' 'अरे भाई'—दूकानदार बोला। 'इस प्रकार क्यों बोलते हैं आप? मैं तो आपपर पूरा विश्वास करके ही दूकान सौंपकर गया था, फिर देखने-सुननेकी बात ही कहाँ है।'

दूकानदारके मुखसे ऐसे आत्मीयताभरे शब्द सुनकर डाकूका हृदय भर आया। उसने झुककर दूकानदारके चरणस्पर्श किये और अपना परिचय दिया। इतना ही नहीं, उसने प्रतिज्ञा की कि 'अब भविष्यमें कभी चोरी या डकैती नहीं करूँगा।'

एक अत्यन्त सामान्य व्यक्तिके ऊपर विश्वास करके उसके जीवनमें परिवर्तन लानेवाले दूकानदारका नाम था—'संत तुकाराम!' 'सुविचार' **[श्रीउपेन्द्रजी पंचाल]**

मनन करने योग्य

एक तितिक्षु ब्राह्मण

प्राचीन कालमें उज्जैनमें एक ब्राह्मण रहता था। उसने व्यापारसे बहुत-सी सम्पत्ति इकट्ठी कर ली थी। वह बहुत कृपण, कामी और लोभी था। क्रोध तो उसे बात-बातमें आ जाता था। उसने अपने जाति-बन्धु और अतिथियोंको कभी मीठी बातसे भी प्रसन्न नहीं किया, खिलाने-पिलानेकी तो बात ही क्या है। वह धर्म-कर्मसे रहित रहता और स्वयं भी सम्पत्तिको काममें न लाता था। उसकी कृपणता और बुरे स्वभावके कारण उसके बेटे-बेटी, भाई-बन्धु, नौकर-चाकर और पत्नी आदि सभी दुखी रहते और मन-ही-मन उसका अनिष्ट चिन्तन किया करते थे। कोई भी उसके मनोऽनुकूल व्यवहार नहीं करता था। वह लोक-परलोक दोनोंसे गिर गया था। वह धनसे न तो धर्म करता था और न ही भोग ही भोगता था। बहुत दिनोंतक इस प्रकार जीवन बितानेसे उसपर पंच महायज्ञके भागी देवता बिगड़ उठे। इससे जिस धनको उसने बड़े उद्योग और परिश्रमसे इकट्ठा किया था, वह धन उसकी आँखोंके सामने ही नष्ट-भ्रष्ट हो गया। उसका कुछ धन तो उसके कुटुम्बियोंने ही छीन लिया। कुछ चोर चुरा ले गये। कुछ दैवी कोपसे नष्ट हो गया। बचा-खुचा कर और दण्डके रूपमें शासकोंने हड़प लिया। इस प्रकार उसकी सारी सम्पत्ति जाती रही। न तो उसने धर्म ही कमाया, न भोग ही भोगे। इधर उसके सगे-सम्बन्धियोंने भी उसकी ओरसे मुँह मोड़ लिया। धनके नाशसे उसके मनमें बड़ी वेदना हुई। आँसुओंके कारण गला रुँध गया। इस प्रकार चिन्ता करते-करते उसके मनमें संसारके प्रति महान् दु:खबुद्धि और उत्कट वैराग्य उदय हुआ। वह मन-ही-मन कहने लगा—हाय! हाय! बड़े खेदकी बात है कि मैंने इतने दिनोंतक अपनेको व्यर्थ ही सताया। जिस धनके लिये मैंने इतना परिश्रम किया, वह न तो धर्म-कर्ममें ही लगा और न सुख-भोगके ही काम आया।

प्राय: देखा जाता है कि कृपण पुरुषोंको धनसे कभी सुख नहीं मिलता। इस लोकमें तो वे धन कमाने और उसकी रक्षाकी चिन्तामें ही जलते रहते हैं और मरनेपर धर्म न करनेके कारण नरकमें जाते हैं। धन कमाने, उसे बढ़ाने तथा रखनेमें सब समय भय एवं चिन्ताका सामना करना पड़ता है। (१) चोरी, (२) हिंसा, (३) झूठ, (४) दम्भ, (५) काम, (६) क्रोध, (७) लोभ, (८) अहंकार, (९) भेद-बुद्धि, (१०) वैर, (११) अविश्वास, (१२) स्पर्धा, (१३) लम्पटता, (१४) जुआ एवं (१५) शराब—ये पन्द्रह अनर्थ मनुष्योंमें धनके कारण ही माने गये हैं। अत: कल्याणकामी पुरुषको चाहिये कि स्वार्थ-परमार्थके विरोधी इस अर्थ नामधारी अनर्थको दूरसे ही त्याग दे। भाई-बन्धु, स्त्री-पुरुष, माता-पिता, सगे-सम्बन्धी जो स्नेह-बन्धनमें बँधकर बिलकुल एक हुए रहते हैं, सबके सब एक पैसेके कारण इतने कट जाते हैं कि तुरन्त एक-दूसरेके शत्रु बन जाते हैं। ये लोग थोड़े-से धनके लिये क्षुब्ध और क्रुद्ध हो जाते हैं। बात-की-बातमें सौहार्द सम्बन्ध छोड़ देते हैं। लाग-डॉट रखने लगते हैं और एकाएक प्राण लेने-देनेपर उतारू हो जाते हैं। यहाँतक कि एक-दूसरेका सर्वनाश कर डालते हैं। मैं अपने कर्तव्यसे च्युत हो गया हूँ। मैंने प्रमादमें अपनी आयु, धन, बल और पौरुष खो दिये। विवेकी लोग जिन साधनोंसे मोक्षतक प्राप्त कर लेते हैं, उन्हींको मैंने धन-संग्रहकी चेष्टामें व्यर्थ खो दिया। यह मनुष्य-शरीर कालके विकराल गालमें पड़ा है। इसको धनसे भोग-वासनाओं और उनको पूर्ण करनेवालोंसे तथा बारम्बार जन्म-मृत्युके चक्करमें डालनेवाले सकाम कर्मोंसे लाभ ही क्या है? इसमें सन्देह नहीं कि भगवान् मुझपर प्रसन्न हैं, तभी तो उन्होंने मुझे इस दशामें पहुँचाया है। और मुझे इस जगत्के प्रति यह दु:ख-बुद्धि और वैराग्य दिया है। वस्तुत: वैराग्य ही इस संसार-सागरसे पार होनेके लिये नौकाके समान है।

मैं अब ऐसी अवस्थामें पहुँच गया हूँ कि यदि मेरी आयु शेष हो तो मैं आत्मज्ञानमें भी सन्तुष्ट रहकर अपने परमार्थ लाभमें भी सावधान रहूँगा। और जब जो समय

शेष है, उसमें भगवत्प्रीत्यर्थ तपस्या करूँगा। तीनों लोकोंके स्वामी देवगण मेरे इस संकल्पका अनुमोदन करें। अभी निराश होनेकी कोई बात नहीं है; क्योंकि राजा खट्वांगने तो केवल दो घड़ीमें भगवद्धामकी प्राप्ति कर ली थी।

उस समय ब्राह्मणने मन-ही-मन इस प्रकार निश्चय करके मैं और मेरेपनकी गाँठ खोल दी। इसके बाद शान्त होकर यह मौनी संन्यासी हो गया।

अब उसके चित्तमें किसी भी स्थान, वस्तु या व्यक्तिविशेषके प्रति आसक्ति न रही। उसने अपने मन, इन्द्रिय और प्राणोंको वशमें कर लिया। वह पृथ्वीपर स्वच्छन्द रूपसे विचरने लगा। वह भिक्षाके लिये नगर और गाँवमें इस प्रकार जाता कि कोई उसे पहचान न पाता। वह भिक्षाके लिये जब गाँवमें

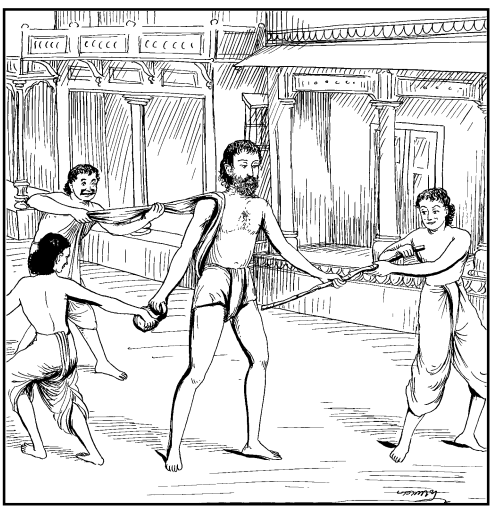

जाता तो दुष्ट लोग उसे बहुत सताते, तरह-तरहसे अपमानित करते, कोई उसका दण्ड छीन लेता, कोई भिक्षापात्र ही झटक लेता, कोई आसन-माला ही लेकर भाग जाता, कोई उसकी लँगोटी और वस्त्र छीनकर इधर-उधर डाल देता, कोई वे वस्तुएँ देकर फिर छीन लेते। जब वह मधुकरी माँगकर एकान्त नदी-तटपर पाने बैठता तो लोग वहाँ भी उसके ऊपर कभी-कभी थूक देते, दुष्ट लोग उसे तरह-तरहसे बोलनेको विवश करते और जब वह उसपर भी न बोलता तो उसे पीटते। कोई उसे चोर कहकर डाँटने लगता, कोई कहता इसे बाँध लो और उसे बाँधने लगते। कोई उसका अपमान करके इस प्रकार ताना कसते कि देखो, अब इस कृपणने धर्मका ढोंग रचा है। धन-सम्पत्ति जाती रही, स्त्री-पुत्रोंने घरसे निकाल दिया। तब इसने भीख माँगनेका रोजगार लिया है, किंतु वह सब कुछ चुपचाप सह लेता। उसे कभी ज्वर आदिके कारण दैहिक पीड़ा सहनी पड़ती, कभी गर्मी-सर्दीसे कष्ट उठाना पड़ता, कभी दुर्जन लोग अपमान आदिके द्वारा उसे भौतिक पीड़ा पहुँचाते, परंतु इससे उसके मनमें कोई विकार न होता। वह समझता कि वह सब मेरे पूर्वकृत कर्मोंका फल है, जो मुझे अवश्य भोगना पड़ेगा।

यद्यपि नीच जन तरह-तरहसे तिरस्कार करके उसे धर्मसे गिरानेकी चेष्टा करते, फिर भी बड़ी दृढ़तासे वह अपने धर्ममें स्थित रहता और कभी-कभी ऐसे उद्‌गार प्रकट किया करता—

मेरे सुख और दुःखके कारण ये मनुष्य नहीं हैं, देवता, ग्रह, कर्म एवं काल भी नहीं हैं। इसका परम कारण महात्माजन मनको ही बताते हैं। मन ही इस सारे संसार-चक्रको चला रहा है। सभी इन्द्रियाँ मनके वशमें हैं। दान, धर्म, यम, विषय, वेदाध्ययन, सत्कर्म और ब्रह्मचर्यादि श्रेष्ठ व्रत इन सबका अन्तिम फल यही है कि मन एकाग्र होकर भगवच्चरणोंमें लग जाय। मनका समाहित हो जाना तो परमयोग है। जिसका मन शान्त और समाहित है, उसे दान-धर्मादि समस्त सत्कर्मोंका फल प्राप्त हो चुका है और जिसका मन चंचल है, अथवा आलस्यसे युक्त है, उसको इन दानादि शुभकर्मोंसे अबतक कोई लाभ नहीं। यथार्थमें मन बड़ा शत्रु है। इसे जीतना बहुत कठिन है, अतः साधक सर्वप्रथम इसी मन-रूप शत्रुपर विजय प्राप्त करे। परंतु होता यह है कि मूर्खलोग इसे तो जीतनेका प्रयत्न करते नहीं, दूसरे मनुष्योंसे झगड़ा करते रहते हैं।

इस प्रकार विचारसे मनको वशमें करके उस मौनी संन्यासीने अपने मनको भगवच्चरणोंमें लगाकर परमगति प्राप्त की। **[श्रीमद्भागवत][प्रे०—वैद्य श्रीभगवतीप्रसादजी शर्मा]**

गीताप्रेससे प्रकाशित—चित्रमय प्रकाशन अब उपलब्ध

चित्रमय श्रीरामचरितमानस, सटीक (कोड 2295) ग्रन्थाकार [चार रंगोंमें]—श्रीरामचरितमानसका स्थान जगत्‌के साहित्यमें निराला है। साहित्यके सभी रसोंका आस्वादन करानेवाला तथा गार्हस्थ्य-जीवन, आदर्श पातिव्रतधर्म, भ्रातृधर्मके साथ-साथ सर्वोच्च भक्ति, ज्ञान, त्याग, वैराग्य तथा सदाचारकी शिक्षा देनेवाला—सबके लिये समान उपयोगी है। भगवान् श्रीरामकी लीलाका दर्शन करानेके उद्देश्यसे 300 से अधिक लीलाओंके मनमोहक रंगीन चित्रोंके साथ चार रंगोंमें आर्टपेपरपर प्रकाशित किया गया है। मूल्य ₹1600, **डाकखर्च फ्री।**

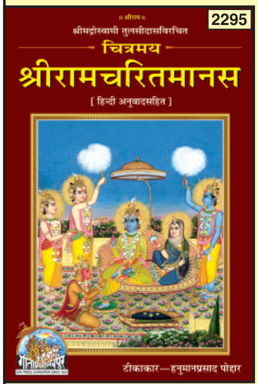

चित्रमय श्रीरामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड—मूल (कोड 2311) ग्रन्थाकार [चार रंगोंमें]—श्रीरामचरितमानसका 'सुन्दरकाण्ड' अपनी विशिष्टताके लिये प्रसिद्ध है। इसमें वर्णनीय सब कुछ 'सुन्दर' है। सुन्दरकाण्डमें राम सुन्दर हैं,कथाएँ सुन्दर हैं, सीता सुन्दर हैं। सुन्दरमें क्या सुन्दर नहीं है? इसके पाठसे समस्त कामनाओंकी सिद्धि प्राप्त हो सकती है। श्रीहनुमान्‌जीकी लीलाके 70 से अधिक आकर्षक रंगीन चित्रोंके साथ आर्टपेपरपर प्रकाशित किया गया है। मूल्य ₹150, डाकखर्च ₹50

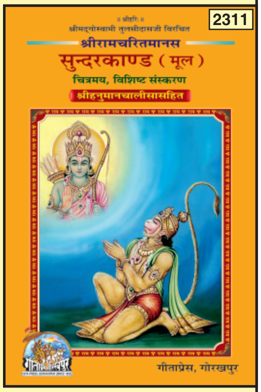

चित्रमय श्रीदुर्गासप्तशती, सटीक (कोड 2304) ग्रन्थाकार [चार रंगोंमें]—दुर्गासप्तशती हिन्दू-धर्मका सर्वमान्य ग्रन्थ है। इसमें भगवतीकी कृपाके सुन्दर इतिहासके साथ ही बड़े-बड़े गूढ़ साधन-रहस्य भरे हैं। कर्म, भक्ति और ज्ञानकी त्रिविध मन्दाकिनी बहानेवाला यह ग्रन्थ भक्तोंके लिये वाञ्छाकल्पतरु है। सकाम भक्त इसके सेवनसे मनोऽभिलषित दुर्लभ वस्तु तथा निष्काम भक्त परम दुर्लभ मोक्षको प्राप्त करते हैं। माँ दुर्गाजीकी 100 से अधिक मनोहारी रंगीन चित्रोंके साथ चार रंगोंमें आर्टपेपरपर प्रकाशित किया गया है। मूल्य ₹450, डाकखर्च ₹90

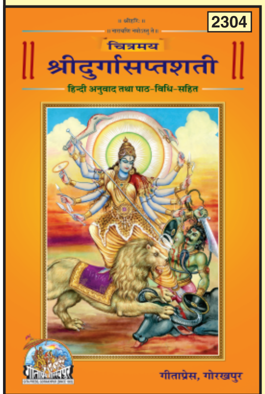

श्रीमद्भगवद्गीता, सटीक (कोड 2267) ग्रन्थाकार [चार रंगोंमें]—प्रस्तुत ग्रन्थमें श्रीगीताके मूल श्लोकोंके साथ सरल भाषामें उसका अर्थ और अन्तमें आरती दी गयी है। साथ ही प्रसङ्गानुकूल यथास्थान बहुत ही 129 मनोरम चित्रोंको भी दिया गया है। मूल्य ₹300, **(कोड 2269)** गुजराती मू० ₹300, **(कोड 2271)** मराठी मू० ₹250, **(कोड 2283)** अंग्रेजी मू० ₹280 **(प्रत्येकका डाकखर्च ₹70)**

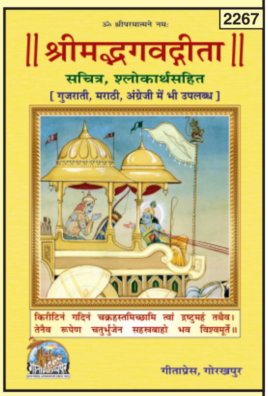

संक्षिप्त चित्रमय शिवपुराण (कोड 2318) [ग्रंथाकार, बड़े अक्षरोंमें, चार रंगोंमें, आर्ट पेपरपर] —215 से अधिक लीलाके रंगीन चित्रोंके साथ पहली बार प्रकाशित किया गया है। इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म शिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। इसमें इन्हें पंचदेवोंमें प्रधान अनादि सिद्ध परमेश्वरके रूपमें स्वीकार किया गया है। शिव-महिमा, लीला-कथाओंके अतिरिक्त इसमें पूजा-पद्धति, अनेक ज्ञानप्रद आख्यान और शिक्षाप्रद कथाओंका सुन्दर संयोजन है। मूल्य ₹1500, **डाकखर्च फ्री।**

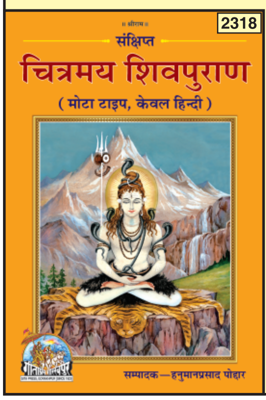

प्र० ति० 20-05-2023

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2023–2025

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR–03/2023–2025

सर्वोपयोगी प्रेरणाप्रद रोचक कहानियाँ

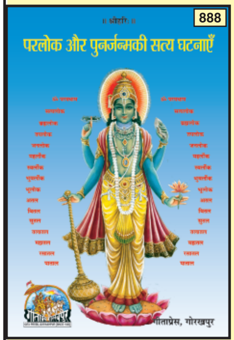

(कोड 888) मूल्य ₹ 30

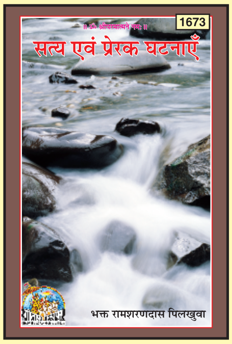

(कोड 1673) मूल्य ₹ 30

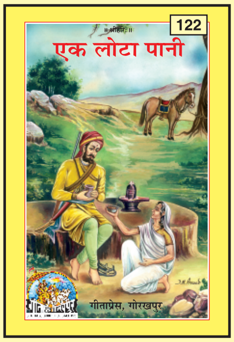

(कोड 122) मूल्य ₹ 30

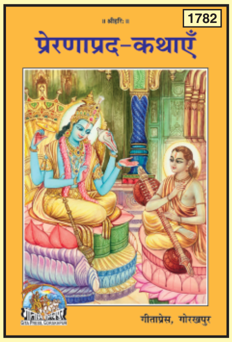

(कोड 1782) मूल्य ₹ 25

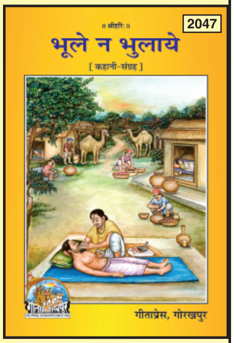

(कोड 2047) मूल्य ₹ 25

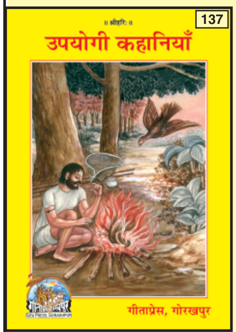

(कोड 137) मूल्य ₹ 25

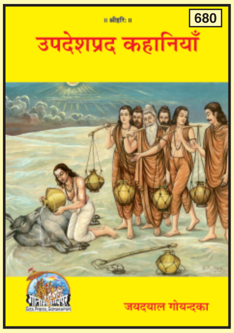

(कोड 680) मूल्य ₹ 25

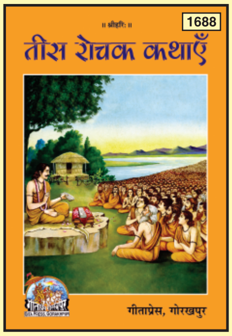

(कोड 1688) मूल्य ₹ 25

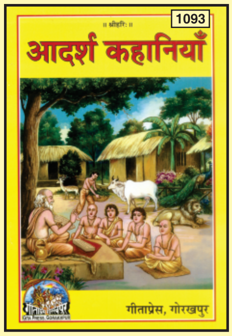

(कोड 1093) मूल्य ₹ 20

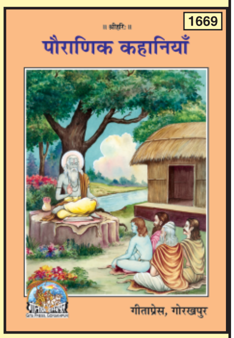

(कोड 1669) मूल्य ₹ 20

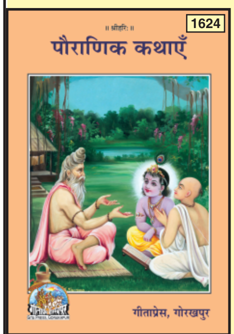

(कोड 1624) मूल्य ₹ 20

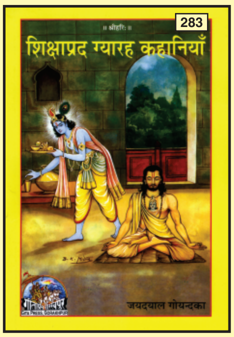

(कोड 283) मूल्य ₹ 20

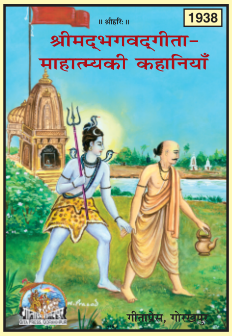

(कोड 1938) मूल्य ₹ 15

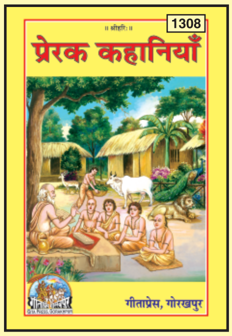

(कोड 1308) मूल्य ₹ 15

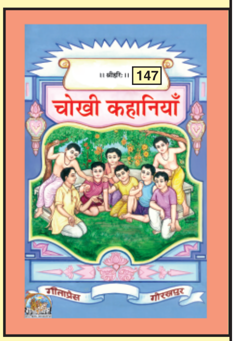

(कोड 147) मूल्य ₹ 15

e-mail : **booksales@gitapress.org**—थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।

Gita Press web : **gitapress.org**—सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।

गीताप्रेसकी पुस्तकें Online कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये—

www.gitapress.org; gitapressbookshop.in

If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)